चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 16, अंक 4 **अप्रैल-जून, 2019**

सम्पादक
बी. बी. कुमार
संयुक्त सम्पादक
डॉ. शिवनारायण

आस्था भारती
दिल्ली-110096

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपये
विदेशों में	$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20. 00 रुपये
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपये
विदेशों में	$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	20,000.00 रुपये
अन्दर कवर	15,000.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ	10,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ	7,000.00 रुपये

आस्था भारती
रजिस्टर्ड कार्यालय : 27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेस-1 विस्तार, दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय : 19/804 ईस्ट एंड अपार्टमेंट्स, मयूर विहार फेस-1 विस्तार, दिल्ली-110 096 से आस्था भारती के लिए डॉ. लता सिंह, आई.ए.एस. (सेवानिवृत्त), सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, E-33 सेक्टर A 5/6, ट्रोनिका सिटी, लोनी, ग़ाज़ियाबाद-201102 (उ.प्र.) से मुद्रित। फोन : 011-22712454

ई मेल : asthabharati1@gmail.com वेब साइट : asthabharati.org

'चिन्तन-सृजन' में प्रकाशित रचनाओं में दृष्टि, विचार और अभिमत उनके लेखकों के अपने हैं। उनसे पत्रिका और 'आस्था भारती' के सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं।

विषय-क्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य 5

1. **बोधकथा :** सोचने की बात 8
विनोबा भावे

2. कलि तारण गुरु नानक आइआ 9
डॉ. नंदलाल मेहता 'वागीश'

3. मानवाधिकार के निहितार्थ 21
दिनेश मणि

4. बाल साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका 27
कृष्णवीर सिंह सिकरवार

5. असत्य और उससे उत्पन्न दोष 43
अंकुश्री

6. मानवतावादी छत्रपति शिवाजी 46
प्रो. जयश्री भास्कर वाडेकर

7. महात्मा गाँधी का साहित्य विषयक चिन्तन 54
डॉ. विश्वास पाटिल

8. आदिकाल और सन्त साहित्य पर शोध 78
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय

9. कर्म का कीर्तन 89
डॉ. शोभाकान्त झा

10. भीष्म प्रतिज्ञा और द्रोपदी का चीर हरण 93
प्रसून चौधरी

11. समकालीन हिन्दी कहानी का समाज 99
प्रो. मृत्युजंय उपाध्याय

12. गाँधी-कला के साहित्य-सूत्र 109
सुधीर कुमार

13. और अंत में : अपने गुनाहों का इकबाल 120
बलराम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

भाषायी पराधीनता की शिक्षा

मातृभाषा दिवस पर संकल्प लिया जाता है कि देश में प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में दी जाएगी और उसके आगे की शिक्षा भी यथासंभव मातृभाषा में ही देने की कोशिश होगी, लेकिन भारत में मातृभाषा संकल्प लेने तक सीमित है। उसे क्रियान्वित करने की कोशिश कभी हुई नहीं! अंग्रेजी भाषा भारत की नीति-निर्णय नियामकों पर हावी है। जिनके पास नीति बनाने के अधिकार हैं, वे सब अंग्रेजीपरस्त हैं। भारतीय भाषाएँ, विशेषकर हिन्दी हाशिए में पड़ी हैं। जब देश में चुनाव होते हैं, तभी देशी भाषाओं की याद हुक्मरानों को आती है। प्रश्न ये है कि देश में ऐसी स्थिति कब से बनी? भारत लगभग एक हजार वर्षों तक औपनिवेशिक दासता का दंश झेलता रहा। आक्रांताओं के रूप में कभी डच आए, कभी पोर्तगीज, यवन, हूंण और मुगलों से लेकर अंग्रेजों तक ने हमारे देश पर शासन किया। जब-जब विदेशी हुक्मरानों की अधीनता में देश रहा, तब-तब उनकी भाषा-संस्कृति का संक्रमण फैला, लेकिन पहले इस देश की अपनी भाषा-संस्कृति थी और उसी में शिक्षा दी जाती थी। तब भारत 'सोने की चिड़िया' कहलाता था और यह तकरीबन 35 प्रतिशत की दर से विकास की धारा में तेजी से बढ़ रहा था। भारत पर अन्तिम उपनिवेश ब्रिटिश हुकूमत का रहा। और शासन कालों की बात छोड़ते हुए यहाँ थोड़ी चर्चा ब्रिटिश काल की करना अपेक्षित है, जो लगभग दो सौ वर्षों का रहा।

शिक्षा की बात करने पर लॉर्ड मेकाले की चर्चा करनी ही होगी। वह शिक्षाविद् नहीं, बल्कि तत्कालीन गवर्नर जेनरल विलियम बैंटिक का कानूनी सलाहकार था। दिमाग से शातिर कूटनीतिक होने के कारण उसने भारत के लिए शिक्षा नीति (1832-36) बनाई, जिसने पूर्व से चली आ रही यहाँ की शिक्षा संस्कृति को ध्वस्त कर दिया। सदियों तक भारत में अंग्रेजी सत्ता बनी रहे, ऐसी नीति पर काम करते हुए उसने भारतीय भाषा और शिक्षा-संस्कृति पर हमला किया। उसने भारत के सहिष्णु धर्म को छद्म ठहराते हुए यहाँ के निवासियों को विलायती संस्कृति का गुलाम बनाने के निमित्त योजना बनाकर उसे धर्म, शिक्षा-संस्कृति और कानून के स्तरों पर लागू किया।

लॉर्ड मेकॉले ने एतद्सम्बन्धी जो पहला नियमन दिया, वह 'White man's Burden' अर्थात् 'गोरे लोगों का बोझ' नाम से जाना जाता है, आशय था कि गोरे लोगों पर ईशा मसीह द्वारा डाला गया दायित्व है कि वे भारत के लोगों का उद्धार करें! ब्रिटिश गोरे देवदूत हैं, जो काले भारतीयों के उद्धार के लिए ही यहाँ आए! इसी तरह मेकॉले ने 2 फरवरी, 1835 ई. को 'मेकॉले विवरणी' (Macaulay minutes) नामक एक संलेख तैयार किया, जिसमें अपने विचार व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—'क्या हम झूठा इतिहास, झूठा नक्षत्र-विज्ञान और झूठा चिकित्सा विज्ञान ही पढ़ाएँ, क्योंकि ये सब एक असभ्य धर्म (हिन्दू धर्म) से सम्बद्ध हैं? मेकॉले का मानना था कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शिक्षा का घोर अभाव है और ज्ञान की दृष्टि से यह बहुत ही निम्न श्रेणी की है। उसने अपने संलेख में यहाँ तक लिखा कि 'लन्दन के एक पुस्तकालय की एक आलमारी के एक छोटे-से हिस्से में रखी गई पुस्तकों का ज्ञान भी भारत के सम्पूर्ण ज्ञान से श्रेष्ठतर होगा।

भारतीय शिक्षा दर्शन के प्रति अनगिन दुराग्रहों से आक्रान्त लॉर्ड मेकॉले ने भारत में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को थोपने का निर्णय किया। उसने 7 मार्च, 1835 ई. से भारत में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रणाली का श्रीगणेश करते हुए तय किया कि सरकारी नौकरियों में वे ही नौजवान लिये जाएँगे, जिन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होगा। वे हर तरह से भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी को थोपते हुए उसका वर्चस्व सिद्ध करना चाहते थे, जो हुआ भी। मेकॉले ने जिस भाषायी गुलामी में यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को पकड़ना चाहा, उसमें सफल रहा और वह भाषायी गुलामी अब तक बनी हुई है। मेकॉले भारतीय शिक्षा व्यवस्था के हर सकारात्मक कदम को कुचल कर हर हाल में अंग्रेजी का वर्चस्व कायम रखना चाहता था, जिसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। उन्हीं दिनों डब्ल्यू. एडम्स के नेतृत्व में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का एक सर्वेक्षण हुआ था। उसकी रिपोर्ट में बताया गया था कि 'भारत के प्रत्येक गाँव में कम से कम एक विद्यालय जरूर है और जिसका पाठ्यक्रम भी बढ़िया है।' अपनी रिपोर्ट में मि. एडम्स ने अनुशंसा की थी कि सरकार देशी शिक्षा के उन्नयन के लिए इन विद्यालयों को धन दे। मेकॉले ने मि. एडम्स की रिपोर्ट को कूड़ेदान में फेंक दिया। मेकॉले का मानना था कि अंग्रेजी जानने वाला ही शिक्षित है, बाकी सब गँवार हैं।

शिक्षा में अंग्रेजी के वर्चस्व से भारतीय विश्वविद्यालयीन शिक्षा चरमरा गई। नौकरी चाहने वाले लोग शहरों की ओर भागने लगे। गाँव वीरान होने लगे। इन सबका दुष्फल यह दुआ कि सन् 1881 ई. की जनगणना में 98 प्रतिशत भारतीय अंग्रेजी नहीं जानने की वजह से अनपढ़ और मूर्ख मान लिये गए। उसके बाद अंग्रेजी शिक्षा के विकास के लिए योरोपीय देशों से ईसाई मिशनरियों को बड़ी संख्या में भारत आमंत्रित किया गया। भारत में राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक मॉडल इंग्लिश स्कूल के नाम से विद्यालय खोलने-चलाने लगे।

मेकॉले की शिक्षानीति ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को कांतिहीन कर दिया। सन् 1881 ई. में गोपालकृष्ण गोखले ने ब्रिटिश हुकूमत से भारतीय शिक्षा के उन्नयन के लिए वित्तीय सहायता की माँग की, जो क्रूरतापूर्वक निरस्त कर दी गई। जनवरी, 1915 ई. में महात्मा गाँधी भारत लौटे। उन्हें मेकॉले की शिक्षानीति के दुष्परिणामों की जानकरी थी। अतः उन्होंने अंग्रेजी भाषा की साम्राज्य नीति के विस्तार पर पहला प्रहार किया। उन्होंने अंग्रेजी की जगह हिन्दुस्तानी भाषा की वकालत की। वे स्थानीय भाषा उन्नयन और उनके परस्पर मेल से हिन्दुस्तान की जबान की बात करने लगे। आगे चलकर उन्होंने बुनियादी विद्यालय, विद्यापीठ आदि की स्थापना पर बल दिया। अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व और उसकी अनिवार्यता के चलते भारतीय बुद्धिजीवी हिन्दी संस्कृति से दूर होने लगे और आधुनिकता के नाम पर उन्होंने ब्रितानी संस्कृति को अंगीकार कर लिया। मातृभाषा अनपढ़ और गँवार लोगों की भाषा मान ली गई।

15 अगस्त, 1947 ई. को भारत आजाद हुआ। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ। संविधान में स्कूली शिक्षा को राज्य की सूची में रखा गया, जिसका स्पष्ट उद्देश्य था कि क्षेत्रीय सरकारें अपनी भाषा में शिक्षा प्रदान करें। मातृभाषा में शिक्षा देने की व्यवस्था आरम्भ हुई। हर राज्य में परीक्षा बोर्ड का गठन किया गया। कहना चाहिए कि शिक्षा व्यवस्था में नए सिरे से सुधार आरम्भ हुए, लेकिन अंग्रेजी मानसिकता में पले आधुनिक शिक्षाविदों के दुष्प्रभाव से 1975 में आपातकाल के दौरान तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी ने स्कूली शिक्षा पर दूसरा बड़ा प्रहार किया। यह दूसरा प्रहार था शिक्षा को राज्य-सूची के साथ-साथ केन्द्र सूची में भी रखना यानी शिक्षा-समवर्ती सूची में डाल दिया जाना ताकि केन्द्र सरकार शिक्षा को सीधा प्रभावित कर सके।

शिक्षा मातृभाषा में दी जाए तथा संस्कृति और शोध की मौलिकता से शिक्षा-व्यवस्था का आरम्भ किया जा सके, यह परिकल्पना धरी की धरी रह गई। महात्मा गाँधी के सद्प्रयासों से पटरी पर लौट रही भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने जो प्रहार किया, उससे हमारी शिक्षा-व्यवस्था अब तक उबर नहीं पायी है। वह आज तक नित्य नए प्रयोगों के नाम पर भी सुधारी नहीं जा सकी है। इसकी कहानी फिर कभी!

—शिवनारायण

बोधकथा

सोचने की बात

विनोबा भावे

एक सत्पुरुष ने मन्दिर बनवाया। उसने देखा कि उसमें सिर्फ हिन्दू आते हैं, मुस्लिम नहीं। वहाँ इस्लामी राज्य था। सत्पुरुष ने सोचा कि मुस्लिम नहीं आते तो यह ठीक नहीं। तब उसने मन्दिर को मस्जिद बना दिया तो मुसलमान बड़े आदर से आने लगे, लेकिन हिन्दुओं ने आना छोड़ दिया। दुःखी सत्पुरुष ने तब मस्जिद तोड़कर वहाँ शौचालय बना दिया।

इस पर बादशाह गुस्सा हो गया, लेकिन मन्दिर से मस्जिद बनाई थी तो उसे गुस्सा नहीं आया था। बादशाह ने सत्पुरुष से इसका कारण पूछा तो उसने जवाब दिया, "इसका परिणाम देखो तो आपको पता चलेगा कि मैंने क्या सोचकर ऐसा किया? मन्दिर बनाया तो मुसलमान नहीं आते थे। मस्जिद बनाई तो हिन्दू नहीं आते थे, लेकिन जब शौचालय बना दिया तो सब आने लगे।"

कलि तारण गुरु नानक आइआ

डॉ. नंदलाल मेहता 'वागीश'

वैदिक काल से ही महाकाल की गति-मति के अनुरूप कभी रुद्ध तो कभी अनवरुद्ध रूप से गतिमान अध्यात्म-चिंतन के परम्परित प्रवाह में निमज्जित मध्यकालीन भारतीय समाज के भक्ति-आन्दोलन ने इतना व्यापक रूप ले लिया था, जिसमें लगभग चार शताब्दियों से भी अधिक समय के लिए भारत का मन भगवान् की शक्ति और करुणा के आह्वान और ध्यान-साधना की आनन्दमयी अवस्था में लीन रहा।

भक्ति का यह प्रवाह अपने परम्परागत स्रोत का परिणाम तो था ही, साथ ही तत्कालीन उत्तर भारत के गति-परिणामों का अनिवार्य फलादेश भी था। लगभग पूरे देश में यवनों का आक्रमणकारी राज्य स्थापित हो चुका था। हिन्दू जनता पर बर्बर अत्याचार जारी थे। अब हिन्दू मन को अपने अतीत इतिहास के गौरव-पृष्ठों को पढ़ने का अवसर नहीं रह गया था। भारतीय मन और अध्यात्म-संस्कृति को सँभालने के लिए भक्ति आन्दोलन एक प्रकार से अपने सहज स्वभाव का उत्तर पाठ था। देर से ही सही, यह स्वाभाविक भी था।

महाभारत के बाद अद्यावधि मध्यान्तर आते-आते संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं का विकास शुरू हो गया था। पुरानी हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से फलित हुआ। यूँ संस्कृत भाषा के शास्त्रीय सिद्धान्तों की परम्परा भी चल रही थी। चर्चा का माध्यम वेदान्त हुआ करता था। ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और गीता पर भाष्य-लेखन जारी था। इसी से आगे चलकर भक्ति के सिद्धान्त पक्ष का विकास हुआ।

उत्तर भारत मुस्लिम आक्रमणों से आक्रान्त था। दक्षिण भारत में स्वामी रामानुजाचार्य विष्णु की भक्ति का प्रचार कर रहे थे। श्री रामानुजाचार्य की परम्परा में आगे चलकर स्वामी रामानन्द हुए। वे विष्णु के अवतार राम के उपासक थे और काशी

*डॉ. नंदलाल मेहता वागीश : शब्दालोक, 1218 सेक्टर-4, अर्बन एस्टेट, गुड़गाँव (हरियाणा) मो. 9910431699

में रहते थे। यही रामानन्द कबीर के गुरु कहे जाते हैं। इधर गुजरात के स्वामी वल्लभाचार्य प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण की लीलाओं में जनता को रस मग्न कर रहे थे। महाराष्ट्र में भक्त नामदेव और ज्ञानदेव सगुण भक्ति का प्रचार पहले ही कर चुके थे। इधर देश के पूर्व भाग में जयदेव कृष्ण भक्ति का संगीत सुना रहे थे। ऐसे ही मधुर स्वरों में मिथिला के विद्यापति का राधाकृष्ण प्रेम जन-हृदय को सम्मोहित कर रहा था।

इधर पूर्वी भारत में बौद्धमत, वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में सक्रिय था। वज्रयान शाखा में 84 सिद्ध हुए हैं। ये शास्त्र-सम्मत भक्ति के स्थान पर गुह्य साधना पर बल देते थे। सिद्धों के साथ नौ नाथों का भी उल्लेख मिलता है। नाथों में, गुरु गोरखनाथ बहुत प्रसिद्ध हुए। नाथों ने समय के अनुरूप स्वयं को परिवर्तित कर लिया था। वे ईश्वर साधना के बाह्य विधानों का विरोध करते हुए अन्तःसाधना से ईश्वर को प्राप्त करने की विधि पर बल देते थे। इन्हीं गोरखनाथ का संत कबीर सहित लगभग सभी निर्गुण संतों की ईश्वर-प्राप्ति की दृष्टि, भक्ति-पद्धति, भाव-साधना और भाषिक मुहावरे पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बद्ध जिज्ञासा-शमन के दो स्रोत होते हैं। एक स्रोत है अन्तःसाक्ष्य और दूसरा स्रोत है बाह्यसाक्ष्य। अन्तःसाक्ष्य के रूप में गुरु नानक की रचनाओं के सन्दर्भ हैं, जो उनके विचार, भाव, भक्ति-स्वरूप और जीवन-दर्शन के द्योतक हैं। बाह्यसाक्ष्य के रूप में गुरु नानक के जीवन वृतान्त के मुख्य स्रोत हैं - भाई गुरदास की 'वारें' सहित सम्बंधित जन्म साखियाँ। इस सन्दर्भ में श्री सेवादास की लिखी गई 'जन्म साखी', भाई बाले की 'जन्म साखी', मेहरबान कृत 'जन्म साखी' और भाई मनी सिंह की 'ज्ञान रत्नावली जन्म साखी' गणनीय हैं। सेवादास की 'जन्म साखी' की दो प्रतियाँ किंचित परिवर्तन सहित दो भिन्न-भिन्न स्थानों से मिली हैं। तो भी इनमें प्रतिपादित विषय और वस्तुगत विवरण एक समान है। इसे पुरातन 'जन्म साखी' के रूप में जाना जाता है। गुरु नानक के बगदाद गमन से सम्बंधित दो शिलालेख भी बाह्यसाक्ष्य के रूप में उल्लेखनीय हैं।

गुरु नानक का प्राकट्य सन् 1469 को कार्तिकी पूर्णिमा के दिन राये भोए तलवन्डी नामक कस्बा जिला लाहौर में हुआ। यह कस्बा आगे चलकर ननकाना साहिब के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुरु नानक के जन्म समय राय बुलार उस स्थान के मुखिया थे। उन्हें बालक नानक से सम्बद्ध एक दिव्य घटना का साक्षात्कार हुआ था। यही राय बुलार आगे चलकर गुरु नानक के शिष्य हो गए। गुरु नानक के पिता अपने गाँव-कस्बे के पटवारी थे।

नानक के पिता का नाम महता कालू राम बेदी और उनकी स्नेहमयी माता का नाम तृप्ता था। पंजाब सहित उत्तर भारत के अनेक परिवारों में प्रसूति के लिए माता का अपने मायके में जाना आम रिवाज था और आज भी यह कहीं-कहीं प्रचलित है। गुरु नानक की बड़ी बहन बेबे नानकी का जन्म भी ननिहाल में हुआ था।

शिक्षा और यज्ञोपवीत कर्म

गुरु नानक की स्वाभाविक रुचि सांसारिक शिक्षा में नहीं थी। उनकी जीवन रुचि परमार्थ हित और सत्य की खोज आदि आध्यात्मिक प्रश्नों पर थी, पर परम्परा और प्रचलन का अपना बल होता है। समय पाकर बालक नानक ने मौलवी सैयद हसन से फारसी तथा पंडित गोपाल और परिवार-पुरोहित पंडित हरदयाल से हिन्दी में लेखन और हिसाब रखना सीखा। ऐसा तर्कानुमान उचित है कि बालपन से ही ज्ञान की उनकी भूख उनके किन्हीं पूर्व जन्मों की साधना का सुफल रही होगी, अन्यथा छोटी-सी अवस्था में ही परमार्थ विषयों की प्रबल रुचि और उनकी ज्ञान-पिपासा एक ही जन्म के अर्जन का परिणाम नहीं हो सकती। यह तात्त्विक सत्य इसी कोटि के सभी महापुरुषों पर लागू होता है। फिर हिन्दू धर्म-चिंतन में जीवन मात्र किसी एक जन्म की घटना नहीं है। त्यागी, तपस्वी और सिद्ध योगी अपने पूर्व जन्म के संस्कारों और उपलब्धियों से उस स्थिति तक पहुँचते हैं। इसका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवत गीता में अर्जुन से स्पष्ट कथन करते हैं–

तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन।।43।।अ.6।।

हे अर्जुन! ऐसा जन्म पाकर वह साधक अपने पूर्व जन्म की दैवी चेतना को पुनः प्राप्त करता है और पूर्ण सफलता के उद्देश्य से वह आगे उन्नति का प्रयास करता है। इसी तत्त्व ज्ञान को ब्रह्मज्ञानी संज्ञा से 'सुखमनी साहिब' में इस प्रकार से व्यक्त किया गया है–

ब्रहम गिआनी सुख सहज निवास।।
नानक ब्रहम गिआनी का नहीं बिनास।।5।।4।।

यह घटना सन् 1478 तदनुसार संवत 1535 की है। गुरु नानक का यज्ञोपवीत संस्कार नौ वर्ष की अवस्था में परिवार के पुरोहित पंडित हरदयाल द्वारा कराया जाना है। उस छोटी-सी आयु में ही गुरु नानक इतने ज्ञान-सजग थे कि बाह्य रीति-रिवाज की अपेक्षा उन्होंने पुरोहित का ध्यान अन्तर्मन की साधना की ओर खींचा। उन्होंने सदाचार, संतोष और सत्य के सच्चे जनेऊ को लक्षित करते हुए पुरोहित (पांडे जी) से कहा–

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब पृष्ठ 471)

पिता कालू राम बेदी चाहते थे कि पुत्र सामान्य सांसारिक जीवन जिए। प्रारम्भ में उन्होंने गाय, भैंस पालने और कृषि उत्पादों से जुड़ने के लिए पुत्र नानक को प्रेरित किया। उनकी अरुचि देखकर उन्होंने पुत्र को कुछ धन देकर व्यापार करने हेतु

'चूहड़खान' (जिला शेखूपुरा—अब पाकिस्तान) भेजा, पर गुरु नानक जी भूखे साधुओं को भोजन खिलाने में वह धन खर्च कर दिया और अपने गाँव वापस आ गए। पिता कालू राम बेदी बहुत निराश हुए, किन्तु गाँव के मुखिया राय बुलार के प्रेरित करने और जीजा जयराम (बेबे नानकी के पति) के चाहने पर गुरु नानक उनके साथ सुल्तानपुर चले गए। जयराम जी की सिफारिश पर सुल्तानपुर के नवाब दौलत खान लोदी ने गुरु नानक को अपने मोदीखाने में रख लिया, पर उनका मन तो सच की खोज में लगा था। सो, वे दिन में नौकरी करते और रात्रि होते-होते सुमिरन में लग जाते।

निरन्तर प्रभु-स्मरण में डूबे गुरु साहिब को आध्यात्मिक अनुभव की आन्तरिक उपलब्धि हुई। एक दिन सुल्तानपुर की ओर बहने वाली काली बेई नदी में स्नान करने के बाद गुरु साहिब यकायक समीपस्थ जंगल में चले गए। इसी बीच यह चिन्ता व्याप्त हो गई कि वे कहीं काली बेई नदी के जल प्रवाह में बह गए हैं। चिन्ता गहरी होती, इससे पहले गुरु साहिब तीन दिन के बाद सुलतानपुर लौटे। उन्हें सकुशल पाकर परिचितों और विशेषकर तलवंडी निवासियों को हार्दिक राहत और प्रसन्नता मिली। वस्तुतः इन दिनों में इस समीपस्थ वन में अनवरत सुमिरन के चलते उनकी आत्मा एकाग्र स्थिति में चली गई और वे असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित हो गए। इसी दौरान उन्हें परमात्मा की दिव्य तरंगों का साक्षात्कार हुआ। ऐसा शब्द-नाम स्वयं सतगुरु ही प्रदान करता है। नाम की समाधि का अपना सुख है - नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई।। (श्री गुरु ग्रथ साहिब अंग 946)

उनकी यह सत्यानुभूति राग मारू के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुई है—

तू अकाल पुरखु नाही सिरि काला।।
तू पुरखु अलेख अगम निराला।।
सत संतोखि सबदि अति सीतलु।।
सहज भाइ लिव लाइआ।। (श्री गुरु ग्रथ साहिब अंग 1038)

इस आध्यात्मिक अनुभूति के साथ गुरु नानक का सारा जीवन रूपान्तरित हो गया। भाई गुरदास ने कहा है—

कलि तारण गुरु नानक आइआ।।
मिटी धुंधु जगि जानणु होइआ।।

विवाह एवं परिवार

सच की खोज में लगे पुत्र नानक के विषय में उनके विवाह की चिन्ता पिता को सताने लगी थी। उन्हें यह भरोसा था कि विवाह के बाद पुत्र नानक शायद सँभल जाएँ। घर में दामाद से विमर्श हुआ और उन्होंने 15 वर्ष का होते-होते नानक जी का विवाह

बटाला (जिला गुरदासपुर - पंजाब) निवासी मूलचंद की सुपुत्री सुलक्षणा से करा दिया। समय पाकर गुरु नानक जी के दो पुत्र हुए—श्रीचंद और लक्ष्मी चंद। बड़े पुत्र श्रीचंद जन्मना शुकदेव सरीखे संन्यासी थे। घर से विमुख होकर उन्होंने संन्यस्त जीवन का अवलम्बन लेते हुए 'उदासी सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। ईश्वर कृपा से वे बहुत दीर्घकाल तक जिए। ऐसा प्रमाण है कि गुरु अर्जुन देव 16 पदी सुखमनी साहिब के अनुमोदन एवं मार्गदर्शन के लिए बाबा श्रीचन्द से, जहाँ आजकल गुरुद्वारा बारह साहिब स्थित है, मिले। निरंकार पिता की वाणी की समता होने से वे बहुत संकोच में पड़ गए, पर गुरु अर्जुन देव जी के पाँचवें नानक होने से उन्होंने विनम्रतापूर्वक 17वीं अष्टपदी के श्लोक हेतु यह शब्द लिखकर दिए - आदि सचु जुगादि सचु।। है भि सचु नानक होसि भि सचु।। समता संकोचवश ही उन्होंने श्लोक के दीर्घ स्वर 'भी' के स्थान पर लघु स्वर 'भि' लिखा। उल्लेखनीय है जब वे अपने निरंकार पिता के चरणों में पहुँचे तो उन्होंने उनकी स्तुति के लिए लिखी गई रचना 'आरता' - उन्हें सुनाई। प्रकृति के महत्त्वपूर्ण दृश्य इस 'आरता' के साक्षी बनें। अपने प्रसन्न पिता से उन्हें भरपूर आशीर्वाद मिले।

धर्म हेतु उदासियाँ

धर्माध्यात्म की जिज्ञासा की चर्चा, विमर्श और भक्ति भाव हेतु साधकों से मिलने के लिए लम्बी अवधि और दूरस्थ स्थानों की जो यात्राएँ गुरु नानक ने जो सम्पन्न कीं, उन्हें सिक्खी में उदासी कहा गया है। सर्वथा तटस्थ (उदासीन) अवस्था में रहते हुए सत्य की खोज में निकलना ही 'उदासी' है। अन्तर की यह यात्रा परमात्मा की सृष्टि को सचेत भाव से देखते हुए साधक की 'चरैवेति अवस्था' है। यूँ इस अवस्था का बाह्य लक्षण, उदासियों की-सी वेशभूषा से भी है। उनकी 'सिध-गोसटि' में जब एक योगी पूछता है कि - हे नानक, तूने घर-बार त्यागकर उदासियों का भेष क्यों धारण किया है तो गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि मैंने सतगुरु की खोज में घर-बार त्याग दिया है और उदासियों का बाना धारण किया है।

पहली उदासी

गुरु नानक साहिब की पहली उदासी सुलतानपुर लोदी से सन् 1500 ई. से कुछ समय पहले शुरु हुई। गुरु नानक का भक्त साथी सारंगी वादक मरदाना उनके साथ था। यह उदासी 12 वर्ष तक चली। पर्वो, त्योहारों के अवसरों पर गुरु साहिब लगभग सभी तीर्थ स्थलों पर पहुँचे। इनमें हरिद्वार, अयोध्या, गोरखमत्ता, प्रयाग, काशी, पटना, गया, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम, सोमनाथ, द्वारिका, पुष्कर और कुरुक्षेत्र मुख्य तीर्थ थे। वे शेष

दूरस्थ स्थानों पर भी गए। लाहौर उनकी पहली उदासी का अन्तिम स्थान था। गुरुनानक जी की पहली उदासी की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख जरूरी है। सुलतानपुर लोदी से गुरु नानक भाई मरदाना के साथ सैदपुर की ओर चले। सैदपुर में पहुँचकर वे वहाँ के एक गुरमुख भाई लालो के घर में रुके। गाँव के मुखिया मलिक भागो ने जब अपने यहाँ न आने की शिकायत गुरु नानक से की तो गुरु साहिब ने वहाँ उपस्थित लोगों के समक्ष एक हाथ में भाई लालो के कोधरे की एक सूखी रोटी और दूसरे हाथ में भाई भागो की घी से सनी रोटी को निचोड़ा तो सूखी रोटी से दूध और घी-सनी रोटी से लहू टपकने लगा। गुरु साहिब ने समझाया कि हक-हलाल की कमाई और अत्याचार की कमाई में यही अन्तर होता है।

पहली उदासी की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना है - एकान्त जंगल में रह रहे ठग शेख सज्जन के यहाँ भाई मरदाना के साथ गुरु साहिब का पहुँचना। ठग ने मन में उन दोनों को कुएँ में धकेलने की योजना बनाई, किंतु सतिगुरु के रूहानी तेज से वह इतना प्रभावित हो चुका था कि उसने अपने उस कपट सहित सभी पुराने पापों को भी कबूल कर गुरु साहिब के सामने प्रायश्चित किया और गुरु जी का सच्चा भक्त बन गया। एक तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में गुरुनानक का प्रसिद्ध संतकवि कबीरदास से मिलना उल्लेखनीय है। 'कबीर वाणी' को श्री गुरुग्रंथ साहिब में सर्वाधिक स्थान मिला है। पहली उदासी की चौथी और अति महत्त्वपूर्ण घटना है, पुरी के यात्रा-काल में गुरु नानक की वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु से भेंट होना। दोनों परम् संत मिले और मिलकर कीर्तन किया। एक उल्लेख के अनुसार गुरु साहिब के शिष्य मरदाना के संग चैतन्य प्रभु के शिष्य सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी भी इस दिव्य कीर्तन में सम्मिलित हुए। संकीर्तन में गोपाल गुरु और नित्यानंद प्रभु भी शामिल थे। 'चैतन्य भागवत' के अनुसार गोपाल गुरु के प्रति नानक का अपार स्नेह था। वैष्णव मत के विद्वानों पर गुरु साहिब की आध्यात्मिक उच्चता का आश्चर्यजनक प्रभाव, लगभग एक सौ वर्ष बाद भी श्रीमदभागवत के दशम स्कन्ध की बंगाली टीका में इस प्रकार अंकित है— प्रणाम है गुरु नानक को, जो सब शास्त्रों का ज्ञानी और ज्ञाता है और सभी गुरुओं का गुरु है।

दूसरी उदासी

गुरु साहिब की दूसरी उदासी दक्षिण की ओर थी। ऐसी अनुश्रुति है कि इस 'उदासी' में सैदों और घेहो नामक दो जाट भी गुरु साहिब के साथ थे। इस 'उदासी' में गुरु साहिब की मुलाकात एक प्रसिद्ध जैन मुनि और एक पाखंडी पीर से भी हुई, जिसे गुरु साहिब ने उपदेश देकर पाखण्डों से दूर किया और समझाते हुए कहा - भक्ति में बाहरी दिखावे व्यर्थ हैं। दक्षिण भारत की यात्रा में गुरु साहिब का श्रीलंका में भी जाना हुआ।

उस समय श्रीलंका के राजा धर्मपराक्रम बाहु थे। उनके दरबार में धर्मकीर्ति स्थविर नाम के राजपुरोहित थे। इन्हीं राजपुरोहित से प्रसिद्ध जैन मुनि का शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जिनाचार्य अपने प्रबल तर्कों से राजपुरोहित पर भारी पड़े।

गुरु साहिब पश्चिमी तट के किनारे-किनारे होते हुए पंजाब की तरफ लौट आए। वापसी पर उन्होंने कई स्थानों पर सत्संग किए, इनमें उज्जैन, विंध्याचल पर्वत और सौराष्ट्र के कई स्थान थे।

तीसरी उदासी

नानक की तीसरी उदासी पंजाब से उत्तर की ओर थी। कहा जाता है इस उदासी में उनके साथ हस्सू लुहार और सिंहा छीपा नामक दो व्यक्ति थे। गुरु नानक जिला गुरदासपुर के अचल बटाला नामक स्थान पर रुके। यहाँ आपकी सिद्ध योगियों से लंबी धर्म-चर्चा चली। महत्त्वपूर्ण यह है कि यहीं रहकर आपने 'सिध गोसटि' की रचना की।

अचल बटाला से चलकर आप श्रीनगर में पहुँचे। वहीं कुछ दिन रुककर आपने सत्संग किया, जिससे प्रभावित होकर आपके अनेक लोग अनुयायी बन गए। ऐसी किंवदन्ती भी है कि हिमालय की ऊँची चोटी पर चढ़कर आप लद्दाख और तिब्बत तक पहुँचे। सुमेरु पर्वत तक पहुँचकर आपकी सिद्धों से एक बार फिर गोष्ठी हुई, जिसका उल्लेख भाई गुरदास ने विस्तार से किया है।

चौथी उदासी

धर्म-चर्चा, संवाद, सहभागिता तथा तदहेतु दूरस्थ देशान्तर दृष्टि से गुरु साहिब की चौथी उदासी महत्त्वपूर्ण है। यह उदासी अटक जिले के एक गाँव हसन अब्दाल से प्रारम्भ हुई। वहाँ के पर्वत पर एक मुसलमान फकीर का वास था। उसने क्रोध में आकर एक चट्टान को गुरु नानक जी पर धकेल दिया। लुढ़कती आ रही चट्टान को गुरु साहिब ने अपने हाथ से रोक दिया। ऐसा विश्वास है कि उस चट्टान पर गुरु जी के पंजे का निशान बन गया। आज इस स्थान पर पंजा साहिब गुरुद्वारा स्थापित है। भाई गुरदास ने गुरु नानक जी के मक्का, मदीना और बगदाद तक जाने का उल्लेख किया है। भाई गुरदास जी के अनुसार गुरु साहिब एक मुसलमान फकीर के वेश में मक्का पहुँचे। उनके वस्त्र नीले थे, एक हाथ में डंडा था, दूसरे में लोटा और बगल में पुस्तक थी। कंधे पर मुसल्ला था। मक्का की एक मस्जिद में सोते समय आपने अपने पैर महराब की ओर कर रखे थे। पुरातन जन्मसाखी के अनुसार एक भाई रुकनुद्दीन ने गुरु साहिब से कहा कि महराब की तरफ पैर करके सोना क्रुफ है, क्योंकि उस ओर

काबा (खुदा का घर) है। इस पर गुरु साहिब ने कहा कि जिधर खुदा का वास न हो, मेरे पैर उधर कर दो। वहाँ उपस्थित दरवेश गुरु जी की ज्ञान-गर्भित वाणी से प्रभावित हुए। भाई गुरदास द्वारा वर्णित 'वारों' से यह भी पता चलता है कि गुरु साहिब मक्का से बगदाद पहुँचे। इस संबंध में दो शिलालेख मिले हैं, जिनसे गुरु साहिब के बगदाद जाने का उल्लेख उपलब्ध है।

पहले शिलालेख में यह मिलता है कि सतिगुरु बाबा नानक फकीर औलिया की याद में सात दरवेशों की मदद से यह भवन बनाया गया। दूसरे शिलालेख का स्वामी आनन्द आचार्य द्वारा देखे जाने का उल्लेख इतिहासकार ए.सी. बनर्जी ने किया है। शिलालेख कहता है कि यहाँ हिन्दू गुरु नानक ने फकीर बहलोल को अपने वचन सुनाए। बहलोल की आत्मा ने गुरु के शब्दों पर इस तरह विश्राम किया है, जिस तरह शहद की मक्खी ऊषा की लाली से प्रकाशित शहद से भरे गुलाब पर बैठती है।

उत्तर जीवन

चौथी उदासी के बाद गुरु साहिब करतारपुर वापस आ गए। यह सन् 1520 के आसपास की बात है। कई इतिहासकार मानते हैं कि बाबर ने जब सैदपुर (अमनाबाद) को बर्बरतापूर्वक लूटा तो गुरु साहिब उसी शहर में मौजूद थे। गुरु साहिब ने अपनी आँखों से बाबर की क्रूरता को देखा था। इस बर्बर विभीषिका का उल्लेख करते हुए गुरु नानक देव ने 'बाबर वाणी' में अपने रब को हार्दिक उपालम्भ देते हए आत्यन्तिक पीड़ा से कहा है – ऐती मार पई करलाणै तै की दरदु न आइआ (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 360) सभी साखियों से यह स्पष्ट है कि अपने जीवन की लम्बी और दूरस्थ उदासियों के दौरान गुरु नानक देव विविध साधु-संतों, साधकों, सिद्धों, योगियों और नाथों से मिले, जिनमें धर्म-शास्त्रों के प्रकांड पण्डित और उच्च विद्वान भी सम्मिलित थे। वे अनेक पीरों-पण्डितों, गुरुओं और तपस्वियों से भी मिले और उनसे धर्म-चर्चा भी की, किंतु जिस परम सत्य की खोज में वे निकले थे, ईश्वर की उस राह में चलने वाले संत उन्हें कम मिले। वस्तुतः श्री गुरु नानक आजीवन ईश्वरभाव में रहे, चलते-फिरते, सोचते और कार्य करते उनका मन प्रभु के नाम-जप और स्मरण में लगा रहता। संसार में रहते हुए भी वे सांसारिकता से अलिप्त रहे।

वाणी

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सामान्य रूप से दसों गुरुओं की वाणी नानक नाम से अंकित है। वस्तुतः सिक्खी परम्परा में सभी गुरुओं को उनके मूल नाम से पूर्व गुरु नानक नामक्रम से जाना जाता है। रचना-दृष्टि से श्री गुरु नानक साहिब के 10 काव्य वाणी

संग्रह हैं, जो इस प्रकार हैं - 'जपुजी साहिब, आसा दी वार, रहरासि, आरती, सोहिला, सिद्ध गोसटि, पहर, पटी, बारह माहा और दखणी ओअंकारु।'

'जपुजी साहिब' को गुरु नानक वाणी का सार कहा जाता है। इसमें रूहानियत के सभी पक्षों पर विचार हुआ है। जपुजी साहिब में परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता के हुक्म से सृष्टि की रचना, अनन्तातापूर्ण एकता, 'सतिगुरु' की आवश्यकता, शब्द को हृदय से सुनने और मुक्त होने की आंतरिक अनुभूतियाँ वर्णित हैं। प्रारंभिक शब्द इस प्रकार हैं - आदि सचु जुगादि सचु।। है भी आदि सचु जुगादि सचु।।

'आसा दी वार' का पाठ मिल कर गाया जाता है। सृष्टि परमात्मा के हुक्म से चल रही है। जीव के अपने वश में कुछ नहीं है। 'रहरासि' सन्ध्या की प्रार्थना के लिए है। इसमें गुरु नानक की 'आरती' का प्रसंग पुरी में चैतन्य महाप्रभु से जुड़ा है। इस में प्रकृति के प्रतीक-उपमानों से सृष्टि में हो रही ईश्वर की आरती का अदभुत वर्णन है। प्रारंभिक पंक्तियों में दृश्य विम्बों की सुन्दरता देखते ही बनती है – गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारका मंडल जनक मोती।। धुपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।। कैसी आरती होइ।। भव खंडना तेरी आरती।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 13)

जपुजी साहिब दिनारंभ की प्रार्थना है तो 'सोहिला' शयन काल की। 'सिध गोसटि' में योगियों और गुरु नानक जी के बीच प्रश्नोत्तर प्रसंग है। कर्मकाण्ड से मुक्त होने के लिए योगियों के समक्ष गुरु नानक ने योग की आन्तरिक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। 'पहर'वाणी में गुरु नानक ने मनुष्य जीवन को रात्रि से उपमित किया है। प्रभात के प्रकाश में जागना ही रात्रिकालीन कष्टों का उपचार है, इसके लिए सजग रहना पड़ता है। 'पटी' काव्य रूप गुरुमुखी के 35 वर्णों पर आधरित है। इस छोटे से काव्य में बुरे कर्मों से दूर रहने और लोकहित के कामों को करने का उपदेश है। 'बारह माह' लिखने का काव्य रूप कवियों में प्रचलित रहा है। प्रकृति-परिवर्तन के आधार पर गुरु नानक ने रूहानी संदेश दिया है। अपनी पहली 'उदासी यात्रा' के दौरान गुरु साहिब ने 'ओअंकारु' शीर्षक से 54 पद्यांशों की लम्बी वाणी की रचना की है। इस में परमात्मा के द्वारा सहज ही तीनों लोकों की रचना करने और प्रकाश रूप में तीनों लोकों में व्याप्त होने का रूहानी संदेश है। 'सतिगुरु' की कृपा से कण-कण में व्याप्त परमेश्वर के रहस्य को समझा जा सकता है।

भाषा

भाषिक रूप-रचना की दृष्टि से गुरु नानक-बाणी में संस्कृत-अरबी-फ़ारसी, हिन्दी-पंजाबी-ब्रजभाषा, सिन्धी, लहंदा, मुलतानी, सिरायकी तथा स्थानीय शब्दों का प्रयोग हुआ है। पंजाबी भाषिक शब्दों पर संस्कृत भाषा की स्वर-भक्ति का विशेष प्रभाव है। गुरु

नानक वाणी 19 रागों में निबद्ध हे। प्रयोग-बाहुल्य की दृष्टि से आसा, गउड़ी, मारू, रामकली और सिरी राग उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात राग तुख़ारी और राग सूही गणनीय है। आलंकारिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, उदाहरण, पर्यायोक्ति, अन्योक्ति, विपर्यय, वक्रोक्ति आदि कथन-रूपों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

सहज उपदेश

समाज में जब कर्मकाण्ड बढ़ जाए तो धर्म लुप्त होने लगता है। मनुष्य की सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए गुरु नानक देव सहित सभी ब्रह्मज्ञानी यही कहते आए हैं कि यदि अन्तर्मन से परमात्मा को पुकारा जाए तो वह दूर नहीं है। रूहानियत का आनंद इन्द्रियों से परे है। अहंकारमुक्त होकर जीने और सेवा करने से हृदय पवित्र होने लगता है। 'जीते जी मरने का' आशय अपने अहंकार से मुक्त होकर जीना है। गुरु नानक के शब्द हैं - नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 730)। प्रभु सभी के हृदय में साक्षी भाव से प्रतिष्ठित है। अपने अन्दर देखने का अर्थ है - अपने साक्षी रूप में परमात्मा को पहचानना। लक्ष्य है कि परमात्म भाव आपके जीवन में उतरे। सच बोलना, सदाचरण में जीना, द्वेष-हिंसा से दूर रहना और अनावश्यक क्रोध से बचना मनुष्यता के लक्षण हैं। यथा भाव प्रियता रखें और अपने दायित्वों का निर्वहण करें। कर्म न करके खाने वाला यदि दूसरों की कमाई पर निगाह रखता है तो यह पाप है - हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 141)।

उक्त कथन में एक ओर तो मांस खाने की परोक्ष निन्दा की गयी है। दूसरी ओर अव्यक्त अर्थ यह भी है कि अपनी नेक कमाई से यथासंभव शाकाहार ही करें और वह भी मिल बांटकर खाएँ। सत्कर्म करते हए भी नाम-स्मरण करते रहें - नानक नामि रते सदा सुखु होइ।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 941)।

संगत सामाजिक दर्शन के साथ-साथ आध्यात्मिक अभ्यास भी है। संगत से गुरु-कृपा का द्वार खुलता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब का स्पष्ट कथन है कि बिना सतगुरु के प्रभु से मिलाप नहीं हो सकता - बिनु गुर दाते कोइ न पाए।। लख कोटि जे करम कमाए।। (अंग 1057)। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में यहाँ तक कहा गया है कि गुरु-सतिगुरु के बिना संसार से पार उतर पाना संभव नहीं है - मत को भरमि भुलै संसारि।। गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि।। (अंग 864)।

केवल अपने कर्मों के बल पर मुक्ति नहीं मिलती, जब तक गुरु की कृपा न हो - कहु नानक प्रभि इहै जनाई।। बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई।। (अंग 864)। गुरु ही मुक्ति प्रदायक शब्द से परिचित कराता है, तभी जाकर मुक्ति मिलती

है। ऐसी व्यवस्था स्वयं परमात्मा की है - बिनु सतिगुरु को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे।। (अंग 1046)। परमात्मा ने स्वयं को गुरु में प्रतिष्ठित किया है - गुरु महि आपु रखिआ करतारे।। (अंग 1024)। अभिप्राय यह कि सतिगुरु और प्रभु एक हैं, कोई भेद नही है।

अवदान

चौथी उदासी के बाद, अपने महाप्रस्थान से पूर्व लगभग 20 वर्षों तक (सन् 1520-1539 तक) श्री गुरु साहिब रावी नदी के किनारे करतारपुर गाँव में रहे। वहाँ रहते हुए उन्होंने संगत के माध्यम से ज्ञान-सत्संग और सच्चाई पूर्वक जीवन-यापन के लिए लोगों को प्रेरित किया। गुरु साहिब ने सामाजिक भाईचारे और परमार्थ हेतु कतिपय नियम-प्रथाएँ स्थापित कीं। लंगर-सेवा को उन्होंने व्यवस्थित रूप दिया। लंगर को पंगत से जोड़ा। पंगत का अर्थ है - पंक्ति। सत्संग के पंगत में बैठकर प्रेमपूर्वक लंगर खाना संगत-सेवा का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया।

लंगर का स्वरूप सामाजिक संगठन को एकसूत्रित कर रहा था। गुरु के लंगर में समानता और नम्रता के साथ दूसरों की सच्ची सेवा करने की भावना निहित थी। संगत में आगत सभी जन ऊँच-नीच का भेद भुलाकर एक ही पंक्ति में बैठकर प्रसाद रूप में प्रीतिपूर्वक भोजन करते। यहाँ तक कि गुरु साहिब के दर्शनों के लिए आने वाले जन भी उसी पंक्ति में बैठकर प्रसाद प्राप्त करते।

दूसरी नियम-प्रथा है - कर-सेवा की। अपने हाथ से सेवा करना कर-सेवा है। संगतें बहुत दूर से आती थीं जिन में बच्चे-बूढ़े और बड़ी उम्र की माताएँ होती थीं। उनके हाथ-मुँह धुलाकर पानी पिला कर, अपने हाथों से मर्यादापूर्वक उनके हाथ-पाँव दबाकर सेवा करने से मानसिक सुख मिलता है। पाँचवें नानक गुरु अर्जुन देव जी द्वारा अपने हाथों से संगतों की सेवा करने का अनुकरणीय आदर्श सिक्खी कर-सेवा में हमेशा याद किया जाता है।

कर-सेवा ही कार-सेवा है। गुरु साहिब द्वारा प्रेरित यह तीसरी नियम-प्रथा है। कर-सेवा जहाँ वैयक्तिक है, वहाँ कार-सेवा सामूहिक सेवा-कार्य है। कार-सेवा से गुरुघर और गुरुद्वारों के निर्माण का सुफल घटित होता है। अपने सामर्थ्य के अनुरूप निर्माण की सह-कारसेवा से अनेक गुरुद्वारे लोक-आस्था को सुलभ हुए हैं। गुरु अमरदास से उत्तरोत्तर सभी गुरुओं द्वारा दिखाये गए ये सभी सेवा-कार्य आज भी जारी हैं। संत साहित्य में गुरु नानक का अवदान एक ऐसे विलक्षण संत के रूप में है, जिन्होंने 'कामिनी' कह कर नारी की निन्दा नहीं की, अपितु नारी - महत्त्व के तार्किक अभिवर्धन से समस्त नारी जाति को सम्मानित करते हुए कहा है - सो किउ मंदा आखीऐ जितु जमहि राजान।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 473)।

समाहार

समाहारात्मक रूप से कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारतधर्मी समाज के ब्रह्मज्ञानी, शिखर संत, श्वास जप के समर्थ साधक, सरल स्वभाव भक्त, सहज कवि, सत्यान्वेषक 'सतिगुरु' नानक देव असाधारण व्यक्तित्व-वाक् के स्वामी थे। वे करुणा के सागर थे। वे त्यागपारायण गृहस्थ के पालक, धर्मज्ञ तत्त्वचिंतक, लयसिद्ध संगीतज्ञ और विश्वबंधुता के विलक्षण अग्रसारक थे। वे समात्मभाव से इस संसार में रहे। इसलिए वे अपने समय में और आज भी अत्यन्त आदर, प्यार, श्रद्धा और पूज्य भाव से कहीं नानक शाह, कहीं नानक पातशाह, कहीं नानक साहिब तो कहीं गुरु नानक देव जी सम्बोध्य संज्ञा से गुरमुखों के हृदयों मे विराजते हैं। वे अहम शून्य स्थिति को प्राप्त थे। उनकी विनम्रता की पराकाष्ठा तो इस रूप में शोभित है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने नाम के साथ गुरु शब्द का प्रयोग नहीं किया। एकाध स्थल पर 'मैं' शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु वह ईश्वर के समक्ष उनके कृत अहंकार की स्वीकृति है, न कि उनकी आत्म-अभिव्यक्ति। रचना में वे सिर्फ नानक हैं, कथन और वार्ता में भी वे सिर्फ नानक हैं। नानक स्वयं को नीच कहते हैं - 'नानक नीचु कहै वीचारु। वारिआ न जावा एक वार।।' - (जपु जी साहिब) इतना ही नहीं उन्होने स्वयं को हरामख़ोर, दुष्ट और चोर तक कहने में कोई हिचक नहीं दिखाई-

मै कीता न जाता हरामखोरु।।
हउ किआ देसा दुसटु चोरु।।
नानकु नीचु कहै बीचारु।।
धाणक रुपि रहा करतार।। (श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग-24)

उत्तरोत्तर श्रद्धा के फलितार्थ सिक्खी परम्परा में यह धारणा मान्य है कि स्वयं निरंकार ही गुरु नानक रूप में अवतरित हुए। इस दृष्टि से अखंड पंचनद (विस्तृत पंजाब) सहित विराट भारत के पूर्व-पश्चिम और उत्तर क्षेत्र के वृहत्तर भू-भाग में नख (नाखून) और अंगुलि-सदृश अनन्य रिश्तों में परिवारस्थ भाव से बँधे सभी हिन्दू-सिक्खों के लिए हरि रूप गुरु नानक, जीवन की सर्वसाँझी आस्था के सम्बल रहे हैं। आज भी गुरु ग्रंथ साहिब में स्थिरमति, हिन्दू-सिक्ख अपने जीवन की कृत-अकृत-स्मृत-विस्मृत असावधानियों और त्रुटियों के लिए हार्दिक क्षमा याचना माँगते हुए सुने जा सकते हैं - गुरु नानक दाता बख़्श लै। बाबा नानक बख़्श लै।। ऐसा कहते हुए उनकी भीतर का अहंकार विगलित हो जाता है। सच्चे मन से रखी गई अरदास से उन्हें 'सतिगुरु' की कृपा प्राप्त होती है।

मानवाधिकार के निहितार्थ

दिनेश मणि

मानवाधिकारों की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। यह उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव जाति, समाज और राज्य। मानवाधिकार को सामाजिक आवश्यकता और वास्तविकता बनने के लिए यह अपरिहार्य था कि समाज की आस्था और व्यवहार में मूल परिवर्तन होता। ऐसा परिवर्तन संविधानवाद द्वारा सम्पन्न किया गया। मानवाधिकारों से मानव का कल्याण सदैव होता रहा है और होता रहेगा, लेकिन वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय मानवाधिकारों के प्रति सजग हो गया है और मानवाधिकारों से विश्वकल्याण और विश्व शान्ति की आशा और अपेक्षा करता है। मानव अधिकार की जो स्थिति आज है, वह व्यक्तियों के राज्य की महती शक्ति के विरुद्ध सदियों के संघर्ष का परिणाम है। आज यह माना जा रहा है कि निरंकुश राज्यों पर मानवाधिकारों से ही अंकुश लगाया जा सकता है।

मानवाधिकार शाब्दिक रूप से वे अधिकार हैं, जो व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। जहाँ लोगों को मानवाधिकारों से योजनाबद्ध तरीके से वंचित किया जाता है, वहाँ मानवाधिकार हासिल करने के लिए लोगों को निश्चित रूप से क्रांतिकारी बनना होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नाजियों ने मानव अधिकारों का विश्व स्तर पर खुलेआम उल्लंघन किया, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति को भारी खतरा पहुंचाया। इस युद्ध के प्रभाव में यह अनुभव किया गया कि विश्वशांति की स्थापना के लिए मानव अधिकारों की उपलब्धि परम् आवश्यक है। अतः 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने ''मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा'' को अंगीकृत किया। इस सार्वभौम घोषणा का विश्वव्यापी प्रभाव हुआ, जिसके कारण मानव अधिकार आन्दोलन समस्त विश्व में फैल गया।

मानव एक बुद्धिमान प्राणी है तथा मानव होने के कारण व्यक्ति ऐसे मूल तथा अहरणीय अधिकारों को धारण करते हैं, जिन्हें मानवाधिकार की संज्ञा दी गई है।

*पूर्व संपादक, 'विज्ञान' मासिक, 35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

मानवाधिकार मनुष्य को मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। अतः ये अधिकार जन्म से ही एक व्यक्ति को उसकी जाति, पंथ, धर्म, लिंग तथा राष्ट्रीयता के आधार पर विभेद किए बिना प्राप्त होते हैं। अतः मनुष्य किसी भी जाति का हो, किसी भी धर्म का अनुयायी हो, पुरुष हो या स्त्री हो तथा किसी भी देश का नागरिक हो, उसे मानवाधिकार प्राप्त होंगे, क्योंकि मानवाधिकार व्यक्ति की गरिमा, उसकी स्वतंत्रता तथा शारीरिक, नैतिक, सामाजिक तथा भौतिक विकास के लिए अपरिहार्य तथा आवश्यक होते हैं। मानवाधिकार को कभी-कभी मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, अन्तर्निहित अधिकार या नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है। मानवाधिकार को सरल रूप में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- ''जो अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानवाधिकार कहा जा सकता है।'' सन् 1923 में विएना में मानवाधिकार पर हुए विश्व सम्मेलन में यह कहा गया कि सभी मानवाधिकार मानव गरिमा से प्राप्त होते हैं तथा प्रत्येक मानव में अन्तर्निहित रहते हैं। मानव ही मानवाधिकार तथा मौलिक अधिकार का केन्द्रीय बिन्दु है। दूसरे शब्दों में मानवाधिकार के न्यूनतम अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके मानव समुदाय के सदस्य होने के कारण, किसी भी अन्य आधारों पर विचार किए बिना, राज्य तथा अन्य लोक अधिकरण के विरुद्ध प्राप्त होते हैं।

मानव अधिकारों की धारणा आवश्यक रूप से न्यूनतम मानव आवश्यकताओं पर आधारित हैं। इनमें से कुछ शारीरिक जीवन तथा स्वास्थ्य के लिए हैं और अन्य मानसिक जीवन तथा स्वास्थ्य के लिए तात्विक हैं। इस प्रकार मानवाधिकार, मानव सम्मान तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य है। प्रत्येक सभ्य समाज में मूलभूत अधिकार या मानवाधिकार को मान्यता दी जाती रही है। परन्तु बर्बर शासकों ने अपने आतंकी शासन के दौरान मानवाधिकार या मौलिक अधिकारों का हनन किया है।

यद्यपि मानव अधिकारों की संकल्पना उतनी ही पुरानी है, जितनी कि प्राकृतिक विधि पर आधारित प्राकृतिक अधिकारों का प्राचीन सिद्धांत, तथापि मानव अधिकारों पद की उत्पत्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय चार्टरों से हुई। सदैव से राजनीतिक समाज में सभ्य जीवन के प्रारम्भ होने पर शक्तियों के दोष और अत्याचार ने मनुष्यों को वरिष्ठ व्यवस्था की खोज के लिए प्रेरित किया है। भौतिक संसार से परे इसने अध्यात्मवाद और दैवी विधि की तरफ प्रोत्साहित किया। सामाजिक व्यवस्था में अत्याचारियों या परोपकारी तानाशाहों द्वारा विहित विधियों के असंतोष ने प्राकृतिक विधि की तरफ आकर्षण पैदा किया, जिसमें तर्क, न्याय, अपरिवर्तनीयता और सार्वभौमिकता का समावेश था; जिनका मानव निर्मित विधियों में अभाव था।

मानव अधिकार, वास्तव में हमारी प्रकृति जो हमारे दैनिक जीवन को विभिन्न रूपों में प्रभावित करती है; के मूल तत्त्वों में है। मानव अधिकार के महत्त्व का अनुमान

इस बात से किया जा सकता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने के पश्चात जब 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो मानवाधिकार के संवर्धन और संरक्षण को इसने अपने प्रमुख उद्देश्यों में रखा। अपने आगे आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने मूल मानव अधिकारों के प्रति मानव की गरिमा और महत्त्व के प्रति अपनी निष्ठा की अभिपुष्टि की। मूल वंश, लिंग, भाषा, या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कामना की। मानवाधिकार समय के अनुक्रम में राजनैतिक और नैतिक संकल्पना ही नहीं रहा यह एक विधिक संकल्पना भी है। मानव अधिकारों की धारणा मानव सुख से जुड़ी है। मानव सुख की धारणा बढ़ते-बढ़ते सामाजिक सुख, राष्ट्रीय सुख और अन्तर्राष्ट्रीय सुख में परिणत हो गई है। आधुनिक काल में यह माना जाने लगा है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुख-समृद्धि मानव अधिकारों की उपलब्धि और उपभोग पर आधारित हैं। प्रारम्भ में प्राकृतिक विधि के दार्शनिकों ने यह प्रतिपादित किया कि प्राकृतिक अधिकार ही सर्वोच्च हैं। प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य की प्रकृति में अन्तर्निहित हैं। इस प्रकार मानवाधिकार प्राकृतिक अधिकरण के रूप में माना गया। इन अधिकारों को दार्शनिकों ने निरपेक्ष बताया और यह प्रतिपादित किया कि प्राकृतिक अधिकार सर्वव्यापी हैं। इस सदी की पीढ़ी के अपने जीने के तौर-तरीके बदल रहे हैं। उपभोग की तरफ आकर्षण से हाशिए पर गुजर-बसर कर रही जनता तक हम (संयुक्त राष्ट्र, राज्य, पूँजीवादी और मानवाधिकारवादी) कैसे पहुँच बना सकेंगे, इस पर संवेदनशील होने का समय आ चुका है। विश्व के साम्राज्यशाली देश थर्ड वर्ल्ड कंट्रीज तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की अन्य संस्थाओं को एक-दूसरे के बारे में सोचना होगा। बीसवीं सदी दो युद्धों की त्रासदी से गुजरी है। संघर्ष, हिंसा, शोषण, दमन और उत्पीड़न का दंश बहुत झेला है मनुष्यों ने, अब आने वाली नई पीढ़ी के लिए क्या एक हिंसक तथा संघर्ष से मुक्त सदी हम दे सकते हैं कि नहीं, यह विचारणीय है, क्योंकि किसी भी दशा में जिन कारणों से आज मानवाधिकार मनुष्यों के पहुँच से बाहर है, यह हमारी विफलता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अथवा स्थानीय स्तर पर न्याय, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और अन्य मामलों के एक मनुष्य को मिलने वाले अधिकार को प्रदान करने के वे प्रयास शुरू करने का वक्त है, जो वास्तव में समता, स्वतंत्रता तथा गरिमा को सामान्य हाशिए के लोगों की अनुभूति का हिस्सा बना सकें। यह तभी संभव है, जब उपेक्षा तथा वंचना के शिकार लोगों को अधिकार प्राप्त होगा।

मानवाधिकारवादियों का एक संकल्प है, जिसे वे शायद पृथ्वी के प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करते हुए देखना चाहते हैं। उनकी सदिच्छा है कि पृथ्वी की मनुष्य-सभ्यता

गरिमा और न्याय से आच्छादित हो। स्वतंत्रता, समानता और प्रतिष्ठापूर्ण जीवन के इस आग्रह से यह महसूस होता है कि कहीं-न कहीं अभी भी मनुष्य की निजता, निजता की स्वतंत्रता और उसकी सुरक्षा बाधित है तथा वे अपने अधिकारों से वंचित हैं। वे अपनी गरिमा को नहीं प्राप्त कर सकें हैं। मनुष्य के अपने मानवीय विकास की प्रक्रिया में बाधा है, जिस अधिकार को देने के लिए विश्व-भर में मानवताधिकारवादी बहस छिड़ी हुई है। अब प्रश्न यह उठता है कि जो अधिकार मनुष्य को जन्म-मात्र से प्राप्त हैं, उनसे वे वंचित क्यों हैं? मानवाधिकार को लेकर जद्दोजहद जो हो रही है, उसका कारण क्या है और वह परिस्थिति कौन-सी है, जिसके कारण हमें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है?

आज भी मानवाधिकारों का सबसे ज्यादा अतिक्रमण दुनिया के देशों में जारी है। सबसे ज्यादा खतरनाक तो भूख, गरीबी, आतंकवाद तथा युद्ध और यौन-हिंसा है। इसमें सबसे ज्यादा प्रभावित हैं तो वे हैं—वृद्ध, महिलाएं, निःशक्त तथा बच्चे। घरेलू हिंसा के मामले तेजी से बढ़े हैं। बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ी है। छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार के मामले बढ़े हैं। निशक्त और वृद्धजनों का संरक्षण घटा है।

मिशेल बैचलेट का कहना है कि सत्तर साल पहले, युद्ध,विनाश और आर्थिक अवसाद से वंचित देशों के लिए, विश्व के नेताओं ने एक योजना तैयार की। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को विश्व के लोगों को संघर्ष और पीड़ा से दूर करने के लिए एक विस्तृत मानचित्र के रूप में इसे माना गया था, जिससे यह सुनिश्चित करना था कि समाजों के बीच संबंध और राज्यों के बीच संबंध स्थायी और शांतिपूर्ण हो सके। घोषणा-पत्र ने न्याय, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक अवसरों और राजनीतिक भागीदारी के लिए बेहतर पहुँच का नेतृत्व किया।....लाखों लोगों की गरिमा को उत्कृष्ट बनाया गया है....हमें आगे बढ़ने की जरूरत है।...हमें अधिक सम्मान की आवश्यकता है। उत्तम न्याय के लिए हमें मानव समानता और गरिमा को बनाए रखने की जरूरत है और हम इसे प्राप्त कर सकते हैं। हम सभी, जहाँ भी हम हैं, हर किसी के मानवाधिकारों के लिए खड़े होकर अवदान दे सकते हैं। यद्यपि, मानवाधिकारों की अवधारणा विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों तथा व्यवस्थाओं में भले विभिन्न समय, काल, परिस्थितियों में अभिव्यक्त होती रही हो, लेकिन इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक आधुनिक परिघटना है। हम जानते हैं कि यह संकल्पना 10 दिसंबर, 1948 को उद्भूत हुई। लेकिन यदि हम संपूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अवलोकन करें, तो यह कहा जा सकता है कि इसका आविर्भाव भी हिंसा, भय और भयानक विनाश के खिलाफ और मानवजाति के अधिकारों के संरक्षण तथा कल्याण के निमित्त किया गया। वास्तव में, मनुष्यता के दमन के खिलाफ यह एक आंदोलन था, जिसे दुनिया के तमाम मानवाधिकारवादियों के सामूहिक पहल तथा संयुक्त राष्ट्र के प्रयास से स्वीकृत हुआ। अब ध्यान देने योग्य यह है कि पिछले 70 से अधिक वर्षों में जो प्रगति

हमें सन् 1948 में स्वीकृत प्रतिज्ञा-पत्रों के माध्यम से प्राप्त करनी थी, उसका आद्योपांत हश्र क्या हुआ? क्या हम वास्तव में उन सभी अंगीकृत मानवाधिकारवादी संकल्पनाओं को मनुष्यों की पहुंच बना पाए अथवा नहीं? इसका आकलन इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि इन्हीं आकलन अथवा आत्मालोचन के जरिए हम नवीन संभावनाओं की खोज करते हैं। इस आत्ममंथन की शृंखला में यह जरूरी है कि सर्वप्रथम हम यह पड़ताल करें कि क्या मनुष्य विकास की संभावनाओं के उच्चतम स्तर पर प्राप्त कर सका है? यों तो मानवाधिकार के 30 सूची रचनात्मक मानवाधिकारवादी संकल्पनाएँ एक व्यापक मनुष्यता की अभिव्यक्ति है, जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मतदान का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम का अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार..., रहने के लिए आवास का अधिकार..., इत्यादि अनेक अधिकारों की शृंखलाओं की संस्तुति है, किंतु विडंबना यह है कि बालश्रम, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य की सुरक्षा, भय और दहशत से अभिशप्त मनुष्यों के लिए मानवाधिकार एक वर्चुअल अभिव्यक्ति कहने के पीछे कई और भी कारण हैं, क्योंकि यथार्थ से हटकर जो घटित हो रहा है, उसकी जिम्मेदारी लेने वाला कोई नहीं है। संयुक्त राष्ट्र रणनीतियाँ बना सकता है। संयुक्त राष्ट्र के उच्चायोग द्वारा वैश्विक स्तर पर योजनाएँ बनाई जा सकती हैं, किंतु आचरण में लाने का उत्तरदायित्व राज्य का होता है। अब जरूरी यह है कि राज्य उसे कितनी गंभीरता से लेता है। यदि राज्य स्वयं में एक नैतिक व्यवस्था है, तो राज्य इसका अनुप्रयोग जमीनी स्तर पर करे, आचरण में लाए और मनुष्यों को मिलने वाले वे सभी अधिकार प्रदान करे, जो उसे जन्म से प्राप्त हैं, जिससे मनुष्य सच में अब भी वास्तव में दूर है।

मानवाधिकारों से संबंधित जो आन्दोलन वर्तमान में विश्वस्तर पर चल रहे हैं, उन्हें देखने से ऐसा लगता है कि इसका विकास अभी हाल का ही है, किन्तु ऐसा नहीं है इसकी जड़े अतीत के गर्त में हैं। प्राचीनकाल से ही राजाओं, सामन्तों और शक्तिशाली पुरुषों द्वारा मानव जाति का शोषण किया जाता रहा है, वे लोगों को अनेक प्रकार की यातनाएँ और प्रताड़नाएँ देते थे। ऐसे उत्पीड़न के विरुद्ध जनता ने सदैव संघर्ष किया और जहाँ कहीं और जब कभी उसे अवसर मिला उसने राजाओं और शासकों के अधिकारों में कमी करवाई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभ्यता का इतिहास स्वतंत्रता और शक्ति के बीच संघर्ष का इतिहास रहा है।

व्यक्ति के जिन मानवाधिकारों को संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में संरक्षण प्राप्त हुआ है वे हैं—वाक्, स्वातंत्र्य, विचार स्वातंत्र्य, धार्मिक स्वातंत्र्य, व्यक्ति का व्यक्ति के साथ संविदा करने का स्वातंत्र्य, समानता, निष्पक्ष, न्याय, अपराध और न्यायिक विचारण के बिना दंडित न किया जाना। ये सब अधिकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और इनके अभाव में मानव जीवन अपूर्ण, दुःखी और निम्नस्तरीय होता है। मानव कल्याण और स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए ये अधिकार अनिवार्य हैं। अधिकार

मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता। इस प्रकार हम मानवाधिकार को ये अधिकार कह सकते हैं, जो मानव को मानव होने के नाते मिलने चाहिए, वे अधिकार जो मानव में मानव होने के नाते अन्तर्निहित हैं, ऐसे अधिकार जो एक मानव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक हैं।

मानवता की रक्षा हेतु मानव अधिकारों के साथ-साथ मानव कर्तव्यों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मानव कर्तव्यों का महत्त्व मानव अधिकारों से किसी प्रकार कम नहीं है। यदि सभी लोग मानव कर्तव्यों का पालन करते हैं, तो मानव अधिकारों का उल्लंघन नहीं हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य हैं, जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास सम्भव है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज है, जिसका उद्देश्य मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं की अभिवृद्धि रहा है। अपने प्रारंभकाल के दिनों में संयुक्त राष्ट्र, आर्थिक और सामाजिक परिषद् और मानवाधिकार आयोग इस धारणा पर कार्य करते रहे कि अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र में साधारण सिद्धांतों की घोषणा की जाए, जिसका नैतिक बल हो और एक पृथक संविदा हो जिसका वैध रूप से उन राज्यों पर आबद्धकर बल हो जिन्होंने इसका समर्थन किया हो और उनके कार्यान्वयन का ढंग भी हो। इस तरह मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा अस्तित्व में आई, जिसको महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को पारित किया। इस घोषणा का विश्व में बड़ा सर्वव्यापी प्रभाव रहा क्योंकि इसके आधार पर बहुत से राज्यों ने अपने संविधानों में घोषणा में उपर्वर्णित मानव अधिकारों को सम्मिलित कर लिया, जिससे वे राज्यों के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हो गए।

समूहनाशक हथियारों, नाभिकीय अस्त्रों, व्यापक स्तर पर फैली हुई आतंकवाद से प्रेरित हिंसा और यंत्रणा आदि से भयाक्रांत विश्व में मानव अधिकारों के प्रति आदर और उनका पालन ही एक आशा है जो उन्नत सभ्यता को विनाश से बचा सकती है। इस आलेख का समापन न्यायमूर्ति वी.आर.कृष्ण अय्यर की उस टिप्पणी से करना प्रासंगिक होगा, जो उन्होंने अपनी पुस्तक–''ह्यूमन राइट्स एण्ड ह्यूमन रांग्स' में लिखा है–''अन्त में, मानवता की मानव अधिकारों को व्यवहार्य वास्तविकता बनाने के लिए इतिहास के निमित्त प्रतिबद्धता है।''

बाल साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

बाल साहित्य लेखन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। बचपन में हमारी दादी, नानी, हमारी माँ ही हमें कहानियाँ सुनाती थीं। जिनमें परियाँ भी होती थी, राजा-रानी भी हुआ करते थे एवं गरीब लकड़हारा और उसकी कुल्हाड़ी भी हुआ करती थी। यह वह समय था जब हम कहानियाँ पढ़ते नहीं सुनते थे। क्योंकि पढ़ने हेतु उस समय न कोई पत्रिका निकलती थी, न समाचार पत्रों तक आम जनमानस की पहुँच थी। कुल मिलाकर हमारे दादा-दादी और नाना-नानी ही बाल कहानियाँ सुनाकर हमें सुलाते थे। यह समय आज भी हम सबको कहीं न कहीं बचपन की ओर ले जाता है। हमारे स्मृति पटल पर बचपन की वह छाप आज भी जिंदा है। दरअसल बाल साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं, अपितु उन्हे आज के जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराना भी है। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि बाल साहित्य की रचना करने वाले लेखक को बाल मनोविज्ञान की पूरी जानकारी होनी चाहिए, तभी वह बाल मानस पटल पर उतरकर बच्चों के लिए कहानी, कविता एवं बाल उपन्यास लिख सकता है।

बाल साहित्य को आयु के आधार पर वर्गीकरण करें तो इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला वर्ग 4 से 12 वर्ष तक के बच्चों के लिए दूसरा वर्ग 12 से 16 वर्ष तक के किशोर बच्चों के लिए। देखा जाए तो पहले वर्ग में कक्षा 1 से 5वीं तक के बच्चे होते हैं एवं दूसरे वर्ग में 6वीं से 12वीं क्लास के बच्चों को रखा जा सकता है। यही हमारे बच्चे किशोर है, जिनके लिए बाल साहित्य का सृजन किया जाता है। इन वर्गों के लिए साहित्य भी सरल-सुबोध भाषा में ही लिखा जाना चाहिए,

* आवास क्रमांक एच-3, राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट रोड, भोपाल-462033
मो. 09826583363 ई-मेल krishanveer74@gmail.com

ताकि बच्चों को आसानी से बात समझ आ सके। कई लेखक इतनी क्लिष्ट भाषा का उपयोग अपने रचनाक्रम में कर देते है कि बच्चे समझ ही नहीं पाते कि लेखक ने क्या लिखा है। ऐसे लेखन से हम सबको बचना चाहिये। स्पष्ट है कि हम बच्चों के लिए साहित्य सृजन कर रहे है, ना कि बडों के लिए।

अगर बाल पत्रिकारिता के इतिहास पर नजर डाले तो हम पाते है कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र द्वारा वर्ष 1882 में बाल पत्रिका 'बाल दर्पण' से बाल पत्रिकाओं की शुरुआत की थी। वर्ष 1906 में अलीगढ़ से 'छात्र-हितैषी' और 'बाल प्रभाकर' पत्रिका बनारस से निकली। परन्तु इसका विधिवत् आरंभ वर्ष 1915 में प्रकाशित 'शिशु' और वर्ष 1917 में प्रकाशित बाल पत्रिका 'बाल सखा' से मान सकते हैं। इस पत्रिका के प्रथम संपादक पं. बद्रीनाथ भट्ट थे। उसके प्रथम अंक में ही घोषणा हुई थी-'बाल सखा' निकाले जाने का उद्धेश्य है—बालक-बालिकाओं में रुचि लाना, उनमें उच्च भावना भरना और दुर्गुणों को निकालकर बाहर करना, उनका जीवन सुखमय बनाना और उनमें हर तरह का सुधार करना।'

'रामायण', 'महाभारत' आदि में भी छोटी-छोटी कई लोक कथाएँ तथा उपदेशात्मक कथाएँ है, जिन्हें बाल साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'सिंहासन-बत्तीसी' और 'बेताल-पच्चीसी' को भी मनोरंजक बाल साहित्य माना गया है। परन्तु यह दुःख का विषय है कि सवा सौ करोड़ की जनसंख्या वाले हमारे देश में बाल साहित्य पर केन्द्रित पत्रिकाओं के प्रकाशन को लेकर प्रकाशक, लेखक व प्रबुद्धजन जरा भी चिंतित नहीं है, क्योंकि कई बाल पत्रिकाएँ आर्थिक कठिनाई के कारण बंद हो चुकी हैं, जो प्रकाशित भी हो रही हैं उनकी संख्या सीमित ही है। यह दशा कहीं से भी सही नहीं कही जा सकती है। मेरे अनुमान से आज बाल पत्रिकाओं की संख्या सौ से ज्यादा नहीं हो सकती है। फिर भी देखा जाए तो बाल साहित्य को पल्लवित-पुष्पित करने में सर्वाधिक भूमिका प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्रों ने ज्यादा निभाई है। यह समाचार पत्र सम-सामयिक जानकारी के साथ-साथ रविवारीय संस्करण में कहीं न कहीं बाल साहित्य को स्थान अवश्य देते हैं। यह पत्र बाल साहित्य को परिशिष्ट के रूप में अथवा स्वतंत्र पत्रिका के रूप में भी प्रकाशित कर रहे हैं। कहा जा सकता है कि इन समाचार पत्रों के माध्यम से हमे प्रति सप्ताह बाल साहित्य के दर्शन होते ही रहते हैं।

ये समाचार पत्र अपने-अपने दृष्टिकोण से बाल सामग्री प्रकाशित करते हैं। कोई समाचार पत्र आधा पृष्ठ में, कोई एक पृष्ठीय सामग्री के रूप में प्रकाशित करता है, तो कई समाचार पत्र कई पेज में सामग्री प्रकाशित करते हैं। कई समाचार पत्र स्वतंत्र रूप से एक बाल पत्रिका के रूप में प्रकाशित करते हैं। कहा जा सकता है कि कहीं न कहीं आंशिक रूप से, कहीं विस्तार से समाचार पत्र बाल साहित्य को आवश्यक रूप से स्थान अवश्य देते हैं। प्रस्तुत आलेख में बाल साहित्य में इन दैनिक

समाचार पत्रों की क्या भूमिका है; इसी पर कहने का एक छोटा सा प्रयास किया गया है। इसके साथ-साथ बाल साहित्य पर केन्द्रित देश से प्रकाशित होने वाली विभिन्न बाल पत्रिकाओं के संदर्भ में भी पाठकों को जानकारी दी जा रही है, ताकि जो पाठक इन बाल पत्रिकाओं से जुड़ना चाहता है उनकों एक ही जगह व्यवस्थित रूप से जानकारी प्राप्त हो सकती है। संदर्भित आलेख में बाल साहित्य पर केन्द्रित पत्रिकाओं की संक्षेपिका यथा-पत्रिका का शीर्षक, पत्रिका में संकलित सामग्री की रूपरेखा, पत्रिका का मेल आई-डी, पत्रिका की बेवसाइट (अगर पत्रिका ई-पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रही हो तो), पत्रिका का दूरभाष नम्बर, पत्रिका का मूल्य आदि के रूप में प्रस्तुत की गई है। आशा है इस जानकारी से किसी भी पाठक को लाभ हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

हिंदी समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' भारत का एक प्रमुख हिंदी समाचार पत्र है, जो वर्तमान में 12 राज्यों में 66 संस्करणों के साथ प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है। यह पाठकों द्वारा सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला प्रमुख हिंदी का दैनिक समाचार पत्र है। यह समाचार पत्र विभिन्न परिशिष्टों के साथ-साथ पिछले 14 वर्षो से 'बाल भास्कर' के रूप में एक बेहतरीन बाल पत्रिका का भी प्रकाशन करता है, जिसमें पूर्णरूपेण बालकों के लिए पठनीय सामग्री प्रकाशित की जाती है। पत्रिका में क्विज स्तंभ के तहत जीनियस बन जाइए, हमारी ऐतिहासिक धरोहर के अन्तर्गत भारत की ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी, हँसी का कोना के तहत हँसो खिलखिलाओ, कहानियाँ, अधूरी कहानी पूरी करों कॉन्टेस्ट, चित्र कथाएँ, सेहत के तहत हेल्थ इज वेल्थ, कवर स्टोरी, माथा पच्ची के तहत सुलझाइये रास्ता, कलर कीजिए, शब्द जाल, क्रॉस पजल बच्चों का खेल-खेल में ज्ञानवर्धन करते है। वर्ग पहेली, शब्दों को ढूँढिए, शब्दों का पिटारा, टेक्नोलॉजी, न्यूज एक्सप्रेस आदि स्तंभ बच्चों को कई प्रकार की नई-नई जानकारी देते हैं। यह एक ऐच्छिक बाल पत्रिका है, जो दो सप्ताह में एक बार शुक्रवार के दिन प्रकाशित होती है। यह पत्रिका बच्चों के मध्य काफ़ी लोकप्रिय है, तथा बच्चे भी इसका बेसब्री से हर सप्ताह इंतजार करते हैं। पत्रिका का मेल आई-डीः-balbhaskar@dbcorp.in है। पत्रिका की एक प्रति का मूल्य 10 रु. है।

झारखंड का सर्वाधिक प्रसारित दैनिक समाचार पत्र है—'प्रभात खबर' जो रांची, पटना, जमशेदपुर, धनबाद, कोलकाता, सिलीगुड़ी, मुजफरपुर, भागलपुर, गया से एक साथ प्रकाशित होता है। यह समाचार पत्र विभिन्न परिशिष्टों के साथ-साथ 'हमारा बाल-प्रभात' शीर्षक से एक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन करता है। यह पत्रिका प्रत्येक शनिवार को प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के प्रधान संपादक श्री आशुतोष चतुर्वेदी एवं संपादक श्री विजय पाठक जी है। सात पृष्ठीय इस पत्रिका में बालकों के लिये प्रचुर मात्रा में सामग्री प्रकाशित की जाती है जैसे-'सैर सपाटा', 'भूलभुलैया', 'माइंड गेम्स', 'टाइम जोन', 'अजब-गजब' आदि। एक रु. (साप्ताहिक) की कम

कीमत में यह पत्रिका बाल पाठकों का भरपूर मनोरंजन करती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-balprabhat@prabhatkhabar.in है।

हिंदी पत्रकारिता को नया आयाम देने वालों में दिल्ली से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र 'जनसत्ता' का नाम अग्रणी है, यह समाचार पत्र दिल्ली के साथ-साथ कोलकाता, चंडीगढ़, लखनऊ से भी निकलता है। इस समाचार पत्र का 'रविवारी जनसत्ता' विविध सामयिक सामग्री से परिपूर्ण रहता है। यह समाचार पत्र आधे पृष्ठ में बाल साहित्य को 'नन्ही दुनिया' शीर्षक से प्रकाशित करता है। यह सामग्री विविधता लिये हुए होती है। इसमें बाल कहानी, कविता, शब्द-भेद, क्या है आपका जबाव? दुनिया उल्टी-पुल्टी, है तुम्हें मालूम? आदि के तहत लाभदायक सामग्री प्रकाशित की जाती है।

छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, हरियाणा व दिल्ली से एक साथ प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र है 'हरिभूमि'। यह समाचार पत्र विभिन्न प्रकार की साहित्यिक, मनोरंजन संबंधी विभिन्न प्रकार के परिशिष्ट के साथ बालकों के लिए 'बालभूमि' परिशिष्ट भी प्रकाशित करता है। यह परिशिष्ट प्रत्येक गुरुवार को प्रकाशित किया जाता है, जिसमें कार्टून कैरेक्टर, रंगभरो, बाल किताबों की समीक्षा, चाइल्ड आर्टिस्ट, हँसगुल्ले, बाल कहानी, नन्हें चित्रकार, रोचक जानकारी के तहत ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का मेल आई-डीः-balbhoomi@haribhoomi.com है।

पंजाब, चंडीगढ़, दिल्ली, हिमाचल, जम्मू, हरियाणा से एक साथ प्रकाशित 'दैनिक सवेरा टाइम्स' का ध्येय वाक्य 'अंधेरे से उजाले की ओर' है। यह समाचार पत्र दो परिशिष्ट भी प्रकाशित करता है। यह दोनों परिशिष्ट प्रत्येक रविवार को ही प्रकाशित किए जाते हैं। 'ग्लैमर' में फिल्मी दुनिया से संबंधित घटनाओं को प्रमुखता से प्रकाशन किया जाता है। दूसरे परिशिष्ट 'संडे सवेरा' में फिल्मी हलचल के साथ-साथ अध्यात्म, प्रसिद्ध लेखक धर्मवीर भारती का कालजयी उपन्यास 'गुनाहों का देवता' का धारावाहिक रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। इसी परिशिष्ट में बाल सवेरा के तहत बालकों पर केन्द्रित लोकप्रिय सामग्री को कहावतें, बाल कविता, हँसी का पिटारा, बोलती लकीरें, टुकड़ों को जोड़कर चित्र पूरा करें, चित्र में रंग भरें, चित्र बनाएँ आदि स्तंभ के तहत प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का मेल आई-डीः-feature.dainiksavera@gmail.com है।

'पंजाब केसरी' जालंधर, चंडीगढ़, लुधियाना, बठिंडा, पानीपत, रोहतक, हिसार, शिमला, पालमपुर, जम्मू से एक साथ प्रकाशित होने वाला दैनिक समाचार पत्र है। यह समाचार पत्र विभिन्न परिशिष्टों के साथ-साथ प्रत्येक शनिवार को 'बाल केसरी' शीर्षक से एक बाल परिशिष्ट का भी प्रकाशन करता है, जिसमें बाल कहानी, बाल कविताएँ, पहेलियाँ, बुद्धि परीक्षण, चित्र कथाएँ, मेरे संग हँस लो आदि के तहत

लोकप्रिय सामग्री प्रकाशित की जाती है। लगभग 15 पृष्ठ की पूर्णतः बालमन को समर्पित पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पत्रिका की लोकप्रियता में चार चाँद लगा देती है।

देवभूमि का अग्रणी समाचार पत्र है 'दिव्य हिमाचल' जो धर्मशाला के साथ-साथ शिमला, चंडीगढ़, पंजाब से एक साथ प्रकाशित होता है। यह समाचार पत्र प्रत्येक बुधवार को 'शिखर' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन करता है, जिसमें 'बचपना' के तहत कहानी, चुटकुले, पहेलियाँ, रंग भरो प्रतियोगिता आदि के तहत एक पृष्ठीय सामग्री प्रकाशित की जाती है।

हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित 'हिमाचल दस्तक' एक प्रमुख समाचार पत्र है। यह समाचार पत्र प्रत्येक रविवार को पत्रिका 'झलक' एवं 'देवधरा' का प्रकाशन करता है। 'झलक' पत्रिका में 'बाल गोपाल के तहत बाल सामग्री को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। इस एक पृष्ठीय सामग्री में बाल कहानी, पहेलियाँ, बालगीत, चुटकुले, कविताएँ, बिंदु मिलाकर चित्र बनाओ, मदद करें, ये भी जानें, अंतर ढूँढो आदि सामग्री प्रकाशित की जाती है। प्रत्येक गुरूवार को प्रकाशित 'देवधरा' में अध्यात्म, स्वास्थ्य, कहानी आदि का प्रकाशन किया जाता है।

भोपाल, जबलपुर, सागर, रायपुर, बिलासपुर से एक साथ प्रकाशित होने वाला दैनिक समाचार पत्र है 'स्वदेश', जिसका ध्येय वाक्य है 'समाचार भी, विचार भी। यह पत्र प्रत्येक रविवार को एक पृष्ठ का साप्ताहिक साहित्यिक परिशिष्ट 'स्वदेश साहित्यिकी' का प्रकाशन करता है। इस परिशिष्ट में कहानी, कविताएँ, गीत, गजल, व्यंग्य, लेख, लोकभाषा एवं बाल साहित्य प्रमुखता के साथ प्रकाशित किए जाते हैं।

नई दिल्ली से पिछले 06 वर्षों से पाठकों की सेवा करने वाला प्रमुख समाचार पत्र 'नवोदय टाइम्स' का प्रकाशन किया जा रहा है। यह दैनिक समाचार पत्र नई दिल्ली के साथ-साथ गुड़गाँव, फरीदाबाद, गाजियाबाद, नोएडा आदि से भी प्रकाशित किया जाता है। यह दैनिक पत्र कुछ प्रमुख परिशिष्टों का भी प्रकाशन करता है। प्रत्येक गुरुवार को प्रकाशित 'मनोरंजन' परिशिष्ट, प्रत्येक रविवार को प्रकाशित 'सिटी टाइम्स' परिशिष्ट। इस परिशिष्ट में बाल कहानी, बाल कविताएँ, पहेलियाँ, बुद्धि परीक्षण, चुटकुले आदि के तहत लोकप्रिय सामग्री प्रकाशित की जाती है। लगभग 08 पृष्ठ की पूर्णतः बालमन को समर्पित पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पत्रिका की लोकप्रियता में चार चाँद लगा देती है।

राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर (राजस्थान) द्वारा 'बालहंस' पत्रिका का पिछले 33 वर्षों से पाक्षिक रूप से निरंतर प्रकाशन किया जा रहा है। इसमें छपी कहानियाँ, चित्र कथाएँ, प्रतियोगिताएँ, सीख सुहानी, सामान्य ज्ञान, क्रॉसवर्ड, गुदगुदी, माथा-पच्ची, अंतर बताओ, नॉलेज बैंक और अन्य सामग्री बच्चों का भरपूर मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करती है। इस पत्रिका के संपादक श्री आनंद प्रकाश जोशी एवं उप संपादक श्री मनीष कुमार चौधरी हैं। पत्रिका का मेल आई-डीः-balhans@epatrika.com है।

भोपाल, इन्दौर, जबलपुर, ग्वालियर, रायपुर एवं बिलासपुर से एक साथ प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र का नाम है—'नई दुनिया'। इस समाचार पत्र की 'नायिका' पत्रिका प्रत्येक शनिवार को प्रकाशित होती है, जिसमें विभिन्न सामग्री के साथ-साथ बाल साहित्य पर केन्द्रित बालकहानी, लघुकथा, कविता आदि के तहत महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की जाती है। सतना, रीवा और भोपाल से एक साथ प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र 'स्टार समाचार' का ध्येय वाक्य 'सच्चाई भी, अच्छाई भी' है। यह समाचार पत्र विभिन्न परिशिष्टों का प्रकाशन करता है, जिसमें प्रत्येक रविवार को प्रकाशित 'स्टार संडे' नामक परिशिष्ट में विभिन्न जानकारी के साथ-साथ कहानी, व्यंग्य को प्रमुखता के साथ प्रकाशित करता है। इसी परिशिष्ट में यह समाचार पत्र 'लिटिल स्टार' शीर्षक से बच्चों के लिए भी प्रमुख सामग्री को प्रकाशित करता है, जिसमें बूझो तो जाने, सामान्य ज्ञान, प्रेरक कथा, गुदगुदी आदि एक पृष्ठीय सामग्री बाल पाठकों के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। इस परिशिष्ट का मेल आई-डीः starsunday.starsamachar @gmail.com है।

सूरत से प्रकाशित 'लोकतेज' नामक दैनिक समाचार पत्र सम-सामयिक जानकारी के साथ-साथ एक पृष्ठीय साहित्य सामग्री को भी प्रस्तुत करता है, जिसमें कहानी, कविता आदि जानकारी समाहित रहती है। इस पृष्ठ पर बाल पाठकों के लिए भी सामग्री संकलित की जाती है। इस परिशिष्ट का मेल आई-डीः- loktejsurat@gmail.com है। बालमन की भावनाओं को शब्द देता हिंदी पाक्षिक समाचार पत्र 'बाल पक्ष' का प्रकाशन देहरादून से पिछले 11 वर्षो से प्रकाशित किया जा रहा है। यह समाचार पत्र भी लगभग आठ पृष्ठ में बाल साहित्य पर प्रचुर मात्रा में बाल सामग्री प्रकाशित करता है। इस समाचार पत्र की एक प्रति का शुल्क 1 रु. एवं वार्षिक 24 रु. है। टी.टी. नगर, जवाहर चौक, भोपाल से बाल साहित्य पर केन्द्रित 12 पृष्ठीय समाचार पत्र 'अपना बचपन' का प्रकाशन किया जाता है। यह समाचार भी सम-सामयिकी जानकारी के साथ-साथ बाल साहित्य को प्रमुखता के साथ प्रकाशित करता है। इस समाचार पत्र की एक प्रति का शुल्क 5 रु. है।

चित्रवंशी प्रकाशन, मिर्जापुर उत्तर प्रदेश से 'नन्हीं दूब' नामक एक छोटी बाल पत्रिका का प्रकाशन किया जाता था। यह पत्रिका भी बाल साहित्य को प्रमुखता से प्रकाशित करती थी। इस पत्रिका के संपादक सुशील कुमार गौड 'मधुकर चित्रवंशी' जी है। यह पत्रिका भी अपने समय में लोकप्रिय रही थी। किसी पत्रिका का लोकप्रिय होना एवं उसे निर्बाध गति से चालू रखना, दोनों अलग-अलग बात है। आर्थिक परेशानियों के कारण फिलहाल इस पत्रिका का प्रकाशन बंद है। इस पत्रिका की एक प्रति का शुल्क 30 रुपये है। हिमाचल प्रदेश की प्रगति एवं संस्कृति का दर्पण है 'गिरीराज', जो प्रत्येक बुधवार को हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित होता है। यह एक साप्ताहिक पत्र है, इस पत्र में हिमाचल प्रदेश की समसामयिक जानकारी के साथ-साथ साहित्य को भी प्रचुरता के साथ प्रकाशित किया जाता है, जिसमें पुस्तक समीक्षा,

कविता, लघुकथा, स्वास्थ्य, बालकविता, युवामंच, कहानी आदि के तहत महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की जाती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-girirajhp@gmail.com & girirajweekly1978 @yahoo.co.in है। गिरीराज को प्रत्येक सप्ताह (बुधवार) को इसकी बेवसाइट www.himachalpr.gov.in पर नियमित रूप से प्रकाशित किया जाता है। इसके कुछ पुराने अंक भी बेवसाईट पर अपलोड करके रखे गए है, जिन्हें आसानी से पाठकों द्वारा अवलोकन किया जा सकता है।

हिन्दुस्तान प्रा.लि. नई दिल्ली समूह का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है 'हिन्दुस्तान' दैनिक समाचार पत्र। यह पत्र पाँच प्रदेश के साथ 21 संस्करणों दिल्ली, उत्त रप्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तराखंड से एक साथ प्रकाशित होने वाला महत्त्वपूर्ण समाचार पत्र है। यह समाचार पत्र सचित्र मासिक बाल पत्रिका 'नंदन' (बच्चों का हंसमुख साथी) का प्रकाशन पिछले 55 वर्षो से नियमित रूप से कर रहा है। इस पत्रिका के प्रधान संपादक श्री शशि शेखर एवं कार्यकारी संपादक जयंती रंगनाथन जी हैं। इस पत्रिका में कहानियाँ, सीरियल स्टोरी, कथा पुरानी, स्तंभ, कविताएँ, चित्रकथाएँ, प्रतियोगिताएँ, थीम स्टोरी आदि के तहत सारगर्भित सामग्री इस पत्रिका की ख़ूबसूरती को कहीं ज़्यादा बढ़ा देती है। लगभग 70 पृष्ठ की बाल पत्रिका बाल साहित्य के क्षेत्र में महती भूमिका निभा रही है। पत्रिका का मेल आई-डीः-nandan@livehindustan.com है। पत्रिका को प्रत्येक माह इसकी बेवसाइट www.livehindustan.com पर भी प्रत्येक माह प्रकाशित किया जाता है। जिसका अवलोकन पाठकों द्वारा किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हजरतगंज, लखनऊ द्वारा पत्रिका प्रकाशन योजना व बाल साहित्य सम्बर्धन योजना के अन्तर्गत 'साहित्य भारती' त्रैमासिक पत्रिका तथा बच्चों की प्रिय पत्रिका 'बालवाणी' द्वैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। बच्चों की प्रिय पत्रिका 'बालवाणी' द्वैमासिक की संपादिका डॉ. अमिता दुबे जी तथा प्रबंध संपादक शिशिर जी है। लगभग 19 वर्षों से निरंतर प्रकाशित इस बाल पत्रिका का स्वागत बाल पाठकों एवं सुधी समीक्षकों द्वारा निरंतर किया जा रहा है। इस पत्रिका के वर्ष मे छः अंक प्रकाशित किये जाते है। इस पत्रिका में कहानी, कविता, स्मरण, नाटक, यात्रा वर्णन, ज्ञानवर्धक लेख, ज्ञान-विज्ञान, प्रेरणा, चित्रकथा, धारावाहिक उपन्यास, बच्चों की कलम से, बच्चों की तूलिका, विविध के अन्तर्गत अंतर ढूंढों, पहेलियाँ आदि के तहत प्रकाशित सामग्री आज भी बच्चों को लुभाती है। इस पत्रिका के कुछ अंक पत्रिका की बेवसाइट www.uphindisansthan.in पर भी देखे जा सकते हैं। इस द्वैमासिक पत्रिका का मेल आई-डीः-directoruphindi@yahoo.in & directoruphindi@yahoo.co.in है।

किलकारी बिहार बाल भवन, सैदपुर, पटना से बच्चों की मासिक पत्रिका 'बाल किलकारी' का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका में कविता, कहानी, एकांकी, यात्रा-संस्मरण, जीव-जंतु, धारावाहिक बाल उपन्यास, विरासत, समझो-बूझो, पहेली,

भाषा-शुद्धि, तुम्हारी रचना, कार्टून का पन्ना आदि के तहत प्रकाशित सामग्री बच्चों के बीच काफी लोकप्रिय है। इस पत्रिका का मेल आई-डीःpublication@kilkaribihar.org & info@kilkaribihar.org हैं। पत्रिका की बेवसाइट www.kilkaribihar.org है।

गांधी पुस्तकालय, शाहजहाँपुर द्वारा बालहित में प्रकाशित बच्चों की अपनी वार्षिक पत्रिका 'बाल प्रभा' है। इस पत्रिका के संपादक डॉ. नागेश पाण्डेय 'संजय', प्रबंध संपादक श्री शिवाजी गुप्त एवं श्री आशीष मिश्र जी है। इस पत्रिका का प्रवेशांक वर्ष 2012 में प्रकाशित हुआ, परन्तु अपनी साहित्यिक सामग्री के कारण बाल पाठकों के बीच अत्यंत कम समय में अपनी गहरी पैठ बना ली है। इस पत्रिका को अभी लंबा सफर तय करना है। पत्रिका का प्रकाशन श्री गांधी पुस्तकालय, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है। पत्रिका में प्रसंगवश, कहानियाँ, कविताएँ, नाटक एवं विविध के तहत चित्रकथा, अजब-गजब, चित्रावली, दिमागी कसरत, पुस्तकालय परिचय आदि सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका का मेल आई-डीः-baalprabha@gmail.com है। इस पत्रिका की एक प्रति का वार्षिक शुल्क 10 रु. है। शिक्षा, साहित्य एवं सांस्कृतिक संस्कार की मासिकी पत्रिका 'बाल वाटिका' है। जो पिछले 23 वर्षों से निरंतर प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका के संपादक डॉ. भैरूंलाल गर्ग एवं सहयोगी संपादक डॉ. कैलाश पारीक जी है। सह संपादन का दायित्व श्रीमती इंदिरा गर्ग जी संभाल रही है। इस पत्रिका का प्रकाशन भीलवाड़ा (राजस्थान) से वर्ष 1996 से निरन्तर किया जा रहा है। इस पत्रिका ने अपनी दो दशकों की यात्रा में कई महत्वपूर्ण पड़ाव पार किये। शुरू से ही अन्य बाल पत्रिकाओं से 'बालवाटिका' ने एक अलग रास्ता लिया, क्योंकि यह शायद अकेली ऐसी मासिक पत्रिका है हो एक बाल पत्रिका होने के साथ-साथ बाल साहित्य आलोचना और बच्चों से जुड़ी चिंताओं को रेखांकित करने वाली पत्रिका भी है। जून 2011 में 'बालवाटिका' का कलेवर बदला और अब यह धीरे-धीरे बाल साहित्य की केन्द्रिय पत्रिका बनती जा रही है। पत्रिका में लेख, कहानी, कविता, यात्रा-वृतांत, संस्मरण, एकांकी, परिचर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि के तहत ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित की जाती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-balvatika96@gmail.com है।

नई दिल्ली का प्रकाशन विभाग देश में अग्रणी प्रकाशन संस्थान होने के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र का सबसे बड़ा प्रकाशन घर है। प्रकाशन विभाग राष्ट्रीय महत्त्व के महत्त्वपूर्ण विषयों एवं भारत की समृद्ध एवं विविधतापूर्ण सांस्कृतिक विरासत की पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का एकमात्र संग्रहकर्ता है। प्रकाशन विभाग एकमात्र ऐसा संस्थान है, जो राष्ट्रीय विरासत को संरक्षित करने तथा राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर उत्कृष्ट एवं सस्ती पाठ्य सामग्री तैयार करने एवं उसकी बिक्री करके सूचना का प्रचार प्रसार करता है। प्रकाशन विभाग देश के विभिन्न महत्त्वपूर्ण शहरों में स्थित अपने विक्रय केंद्रों तथा ऐजेंटो के माध्यम से अपनी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं

का विक्रय करता है। पुस्तकों के अतिरिक्त प्रकाशन विभाग राष्ट्रीय एवं सामाजिक महत्त्व की 21 पत्रिकाओं को भी प्रकाशित करता है।

इन पत्रिकाओं मे प्रकाशन विभाग की चार महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ हैं, जिन्हें पाठकों का असीम स्नेह मिला हुआ है। इनमें सर्वप्रथम 'आजकल' पत्रिका का नाम लिया जा सकता है। आजकल हिंदी एवं उर्दू की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक मासिक पत्रिका है। इस पत्रिका में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विभिन्न पक्षों पर अनेक विशेषांक प्रकाशित किये जा चुके हैं। पत्रिका में संस्कृति एवं साहित्य के विभिन्न आलेख, कहानी, गीत, कविताएँ, पुस्तक समीक्षाएँ आदि के तहत महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रकाशित की जाती है। यह पत्रिका वर्ष 1945 से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका ने अपने प्रकाशन के हाल ही में 70 वर्ष पूर्ण कर लिए है। वर्तमान में पत्रिका की संपादिका फरहत परवीन है। दूसरी पत्रिका बालकों को पूरी तरह समर्पित 'बालभारती' मासिक पत्रिका है। हिंदी में लोकप्रिय मासिक पत्रिका बालभारती वर्ष 1948 से लगातार प्रकाशित हो रही है, इसका उद्देश्य बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें शिक्षित करना तथा लघुकथाओं, कविताओं, चित्र कहानियों और सूचनाप्रद लेखों के माध्यम से उनमें नैतिक गुणों का समावेश करना एवं उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना है। पत्रिका के वरिष्ठ संपादक श्री राजेन्द्र भट्ट एवं संपादक श्री जयसिंह जी है। पत्रिका का मेल आई-डीः-balbharti1948@gmail.com है। तथा पत्रिका की बेवसाईट www.publicationsdivision.nic.in है।

वर्ष 2007 में अलीगढ़ से बाल रचनाकारों की राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'अभिनव बालमन' प्रकाशित होती है। यह बालसाहित्य की सुरुचिपूर्ण त्रैमासिक बाल पत्रिका है। पत्रिका में नन्हे बाल साहित्यकारों की कलम को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका के संपादक निश्चल है।

इकतारा बाल साहित्य केन्द्र, भोपाल से बाल विज्ञान पत्रिका के रूप में 'चकमक' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। यूँ तो चकमक को सभी पाठक बड़े चाव से पढ़ते है पर मुख्यतौर पर यह 11-14 वर्ष के बाल पाठकों को ध्यान में रखकर सामग्री को प्रकाशित किया जाता है। चकमक बच्चों को एक समझदार इंसान के रूप में जानती है, इसलिए इस पत्रिका में दुनिया के तमाम विषयों पर सामग्री प्रस्तुत की जाती है। यह पत्रिका बच्चों को महज परियों, राजा-रानियों के किस्से-कहानियों तक सीमित रखने की सोच की बजाय यथार्थ से अपने पाठकों को परिचित कराती है। चकमक मानक, जड़ भाषा की जगह लचीली और जीवन्त भाषा की सिफारिश करती है। बच्चों से समानता की भाषा में बात करती है। इसमें साहित्य व विज्ञान आदि के अलावा कला पर विशेष तौर पर सामग्री पेश की जाती है। चकमक में कथाएँ पाठक के लिए एक अनुभव बनकर आती है। इन कथाओं की जड़ जीवन के ठीक पड़ोस में होती है, इसलिए उन्हें पढ़ते-सुनते हुए अपने आसपास के जीवन की गंध आती

रहती है। पत्रिका के संपादक-द्वय श्री सुशील शुक्ल एवं शशि सबलोक जी हैं। पत्रिका को ई-पत्रिका के रूप में भी प्रकाशन किया जाता है। कुछ अंक पत्रिका की बेवसाइट www.eklavya.in & chakmak.eklavya.in पर भी देखे जा सकते है। पत्रिका का मेल आई-डीः-chakmak@eklavya.in & circulatuon@eklavya.in हैं।

सरस्वती बाल कल्याण न्यास, इन्दौर से सचित्र प्रेरक बाल मासिक के रूप में विश्व का सर्वाधिक प्रसारित बाल मासिक 'देवपुत्र' पत्रिका का प्रकाशन पिछले 39 वर्षो से किया जा रहा है। पत्रिका के प्रधान संपादक श्री कृष्ण कुमार अस्थाना एवं प्रबंध संपादक डॉ. विकास दवे जी है। पत्रिका में कहानी, कविता, आलेख, प्रसंग, जानकारी, चित्रकथा, बूझों तो जानों, छोटा-बड़ा, रंग भरों, समस्या हल करिए एवं स्थाई स्तंभ में पुस्तक परिचय, संस्कृति प्रश्नमाला, आपकी पाती, उलझ गए, आओ जरा हँस लो, इन्डोर गेम आदि की जानकारी बालकों को खूभ लुभाती है। पत्रिका को ई-पत्रिका के रूप में भी प्रकाशन किया जाता है। कुछ अंक पत्रिका की बेवसाईट www.devputra.com पर भी देखे जा सकते है।

इकतारा-तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, भोपाल का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र है। इस केन्द्र के प्रमुख कार्य बाल साहित्य के विमर्श के लिए एक साझा मंच बनाना, बाल साहित्य सृजन तथा प्रकाशन, बाल साहित्य संसाधन केन्द्र बनाना, बाल पत्रिकाओं तथा बाल साहित्य प्रकाशन के तमाम पहलुओं का स्तर उठाने के लिए साझा मंच तैयार करना एवं विभिन्न भाषाओं में बाल साहित्य के रचनाकारों तथा कृतियों के आपसी लेनदेन का मंच बनाना। सोसायटी द्वारा फिलहाल जो काम शुरू किए जा चुके हैं उनमें प्रमुख है 'प्लूटो' एवं 'साइकिल' शीर्षक से दुमाही पत्रिकाओं का संयुक्त प्रकाशन। प्लूटो पत्रिका प्रमुख रूप से 8 साल तक के बच्चों को ध्यान में तैयार की गई है। इस पत्रिका में कविता, कहानियाँ, चुटकियाँ, पत्र एवं तमाम विधाएँ और अपने आसपास के भरे-पूरे जीवन की झलक देखी जा सकती है। यह पत्रिका दो महीने में एक बार प्रकाशित की जाती है। इसमें पूरी पृथ्वी की झलक का सपना है। एक समावेशी दुनिया का छोटा सा सपना है। इन द्वैमासिक दोनो पत्रिका के संपादक-द्वय श्री सुशील शुक्ल एवं शशि सबलोक जी है। 'साइकिल' पत्रिका 9 से 12 वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित की जाती है। इस साइकिल में एक सुरीली घण्टी भी है, जो टकरावों को कम करने का एक सपना है। चींटी से लेकर हाथी और हाथी से लेकर चींटी तक सबकी बात इस पत्रिका में की जाती है। विज्ञान, गणित, भाषा, भूगोल, यात्रा, डायरी, पत्र, चित्र, कविता आदि के तहत प्रकाशित सामग्री बच्चों को बहुत भाती है। लगभग 80 रंगीन पृष्ठों में एक से बढ़कर एक सामग्री इस पत्रिका में प्रकाशित की जाती है। प्लूटो पत्रिका का मेल आई-डीः-pluto@ektaraindia.in है एवं साइकिल पत्रिका का मेल आई-डीः-cycle@ektaraindia.in है। पत्रिका की बेवसाईट www.ektaraindia.in है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नईदिल्ली से त्रैमासिक पत्रिका 'फिरकी बच्चों की' का प्रकाशन किया जाता है। इस पत्रिका के शैक्षणिक संपादक ऊषा शर्मा एवं मीनाक्षी खार है। यह एक निःशुल्क पत्रिका है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री बच्चों का भरपूर मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-readingcell.ncert@gmail.com है। दूरभाष नं. 011-26560824

हँसी और मस्ती की पाठशाला के रूप में मायापुरी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'लोटपोट' पाक्षिक का प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा में भी प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक श्री अमन बजाज है। बाल कहानी, चित्र बनाओं, रंग भरो, क्या आप जानते है? भूल भुलैया, अंतर ढूँढिए आदि कॉलम के तहत लगभग 44 पृष्ठ की यह पत्रिका बच्चों का भरपूर मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धन करती है। इस पत्रिका का मेल आई-डीः-edit@mayapurigroup.com है। पत्रिका को ई-पत्रिका के रूप में भी प्रकाशित किया जा रहा है। इस पत्रिका के कई अंक इसकी बेवसाइट www. mayapurigroup.com &www.lotpotmagazine.com पर भी पाठकों द्वारा अवलोकन किए जा सकते है।

अणुव्रत विश्व भारती एवं भागीरथी सेवा प्रन्यास का संयुक्त प्रकल्प के रूप में 'बच्चों का देश' राष्ट्रीय बाल मासिक पत्रिका का प्रकाशन पिछले 20 वर्षो से राजसमन्द (राजस्थान) से किया जा रहा है। इस पत्रिका के संपादक श्री संचय जैन एवं सह संपादक श्री प्रकाश तातेड़ जी हैं। पत्रिका में कहानी, प्रेरक प्रसंग, कविता-गीत एवं खेल-खेल में स्तंभ के तहत अंतर ढूँढिए, सुडोकू, वर्गपहेली, दिमागी कसरत, सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी, चित्र बनाओं, रंग भरो, पहेलियाँ, जादू मन्तर, बालोदय क्लब, बनाएँ कागज के खिलौने, चुटकुले, पढ़ो और जानों, जीव जगत आदि के तहत सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका का मेल आई-डीः-bachchon_ka_desh@ yahoo.co.in है। पत्रिका की बेवसाइट www.bachchonkadesh.com है।

दिल्ली प्रेस भवन, नई दिल्ली से परेश नाथ के संपादन व प्रकाशन में 'चंपक' बाल पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। चंपक का प्रकाशन पाक्षिक रूप में किया जाता है। यह पत्रिका हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, तमिल, तेलगु, मराठी, मलयालम आदि 8 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होने वाली एकमात्र पत्रिका है। हिंदी एवं अंग्रेजी में इस पत्रिका को सी.डी. के फार्मेट में भी प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका में सुनो कहानी के तहत बच्चों को लुभाती हुई बेहतरीन कहानियों को संकलित किया जाता है। इसके साथ-साथ चित्र कथाएँ, मन बहलाओं स्तंभ में सुंदर रंग भरो, याददाश्त बढ़ाएँ, देखो हँस न देना, बताओ तो जानें, बिंदु मिलाओ, चित्र पूरा करें, सुलझाएँ, अंतर बताओ, रास्ता बताओ, गलती बताएँ आदि जानकारी बच्चों के बीच बहुत लोकप्रिय है। पत्रिका का मेल आई-डीः- writetochampak@delhipress.in

& articalhindi@delhipress.in पत्रिका की बेवसाईट www.facebook.com/champakmagazine है।

वनिता, मैजिक पॉट और मनोरमा ईयर बुक, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित नर्सरी व प्राइमरी स्कूली बच्चों के लिए बाल पत्रिका 'अक्कड़ बक्कड़' का प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका के मुख्य संपादक श्री प्रेम मेमन मेथ्यू एवं सह संपादक श्री ए.वी. श्रीशंकर है। इस पत्रिका में बाल कहानियाँ, गलतियाँ ढूढों, अधूरा चित्र बनाओ, पहचानों कौन, चित्र कथाएँ, जंगल की दुनियाँ, देखों और ढूढो, बिंदु मिलाओ, बालकथा, देखो और बनाओ, रंग भरो, अंग्रेजी सीखो, रिक्त स्थान भरो, छिपे अक्षर ढूंढो आदि स्तंभों में बाल साहित्य पर केन्द्रित लोकप्रिय सामग्री को प्रकाशित करना इस पत्रिका का मूल उद्देश्य है। पत्रिका का मेल आई-डीः-akkadbakkad@mmp.in & subscription@mmp.in है। इस पत्रिका की एक प्रति का मासिक शुल्क 20 रू., वार्षिक 240 रू., द्वैवार्षिक 480 रू. है।

बच्चों के बौद्धिक विकास की अनूठी पत्रिका के रूप में 'हँसती दुनिया' मासिक पत्रिका का प्रकाशन संत निरंकारी मंडल, नई दिल्ली द्वारा पिछले 46 वर्ष से निरंतर किया जा रहा है। यह पत्रिका चार भाषाओं यथा-हिंदी, अंग्रेजी, मराठी एवं पंजाबी भाषा आदि में प्रकाशित की जाती है। पत्रिका के मुख्य संपादक श्री हरजीत निषाद, संपादक श्री विमलेश आहूजा एवं सहायक संपादक श्री सुभाष चन्द्र जी है। इस बहुरंगी पत्रिका में कहानियाँ, बाल कविताएँ, आलेख, चित्रकथाएँ, इतिहास कथा, एवं नियमित स्तंभ में अनमोल वचन, कभी न भूलो, पढ़ो और हँसो, रंग भरो, सम्पूर्ण अवतार वाणी एवं आपके पत्र मिले आदि के तहत लोकप्रिय सामग्री प्रकाशित की जाती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-editorial@nirankari.org एवं पत्रिका की बेवसाइट www.kids.nirankari.org है।

नई पीढ़ी के बच्चों का सम्पूर्ण मासिक के रूप में दीवान पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नईदिल्ली से बच्चों की लोकप्रिय मासिक बाल पत्रिका 'नन्हें सम्राट' का प्रकाशन बाल साहित्य में अभूतपूर्व उपलब्धि है। यह पत्रिका अभी भी बालकों के बीच लोकप्रिय बनी हुई हैं। इस पत्रिका की एक प्रति का शुल्क 30 रु. है। चमोली (उत्तराखंड) से त्रैमासिक पत्रिका 'बाल बिगुल' का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका के संपादक श्री लक्ष्मण सिंह नेगी एवं सह संपादक श्री रघुवीर सिंह चौहान जी है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री रूचिपूर्ण एवं पठनीय है। पत्रिका का मेल आई-डीः-jandesh74@rediffmail.com है।

बाल एवं किशोरों की लोकप्रिय अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'लल्लू जगधर' का प्रकाशन लखनऊ (उ.प्र.) से किया जा रहा है। यह पत्रिका पिछले छत्तीस वर्षो से निरंतर बाल पाठकों की सेवा कर रही है। बाल पाठकों को ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित करने का पूर्ण श्रेय पत्रिका के संपादक श्री राजकुमार जैन 'राजन' को जाता है। पत्रिका की एक

प्रति का अर्द्धवार्षिक शुल्क 30 रु., वार्षिक 60 रु. एवं आजीवन सदस्यता शुल्क 500 रु. है। निरालानगर, लखनऊ से अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक बाल पत्रिका 'कोंपल' का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका की संपादिका गीतिका है। पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, बचपन की यादें, फिल्मी कोना, शख्सियत, विज्ञान के रोजमर्रे के प्रयोग एवं कला खिड़की के तहत चित्रकथा एवं गोलू के कारनामे आदि प्रकाशित किये जाते है। पत्रिका का मेल आई-डीः-editor.compal@gmail.com है। बच्चों के चतुर्दिक विकास में समर्पित हिंदी मासिक पत्रिका 'बालस्वर' का प्रकाशन गोरखपुर, उत्तर प्रदेश से पिछले 22 वर्षों से निरंतर किया जा रहा है। यह पत्रिका बच्चों के स्वतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति के एक मंच के रूप में जानी जाती है। जुलाई 1996 से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में एक ओर अच्छी और पठनीय सामग्री बच्चों के बीच लोकप्रिय रही, वहीं दूसरी तरफ बच्चों के अंदर चारित्रिक, नैतिक और सदआचरण जैसे विषयों की समाहित करने से 'बालस्वर' स्वीकारोक्ति अभिभावकों के बीच भी बनी। समय के साथ-साथ 'बालस्वर' में कलेवर, रंगरूप में परिवर्तित होता रहा। किस्से कहानियों के साथ-साथ बच्चों से संबंधित समाचार, प्रतिभाशाली बच्चों के साक्षात्कार, प्रेरणा देने वाले प्रसंग, सामान्य ज्ञान के विषय, खेलकूद की जानकारियाँ, विज्ञान के अद्यतन जानकारियों के साथ ही विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं ने बच्चों के बीच इसकी लोकप्रियता कायम रखी। बच्चों को पठनीय सामग्री उपलब्ध करने के साथ-साथ बच्चों के अंदर छिपी रचनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए 'बालस्वर' ने समाज में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयास किए है। बच्चों को प्रदूषण, यातायात के नियमों, स्वास्थ्य एवं अन्य विषयों में जागरूक बनाने के लिए शिविरों का आयोजन आदि ने इस पत्रिका को नई ऊँचाई प्रदान की है। वास्तव में बालस्वर बच्चों से संबंधित विभिन्न समस्याओं के प्रति बच्चों सहित समाज को जागरूक बनाने का एक सांस्कृतिक आंदोलन है। इस पत्रिका की एक प्रति का शुल्क 20रु. है।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नईदिल्ली द्वारा हिंदी तथा अंग्रेजी में द्विभाषी पत्रिका 'पाठक मंच बुलेटिन' का प्रकाशन किया जाता है। यह एक मासिक पत्रिका है जिसके संपादक मानस रंजन महापात्र है तथा सहायक संपादक श्री द्विजेन्द्र कुमार है। पत्रिका हिंदी तथा अंग्रेजी दोनो भाषाओं के लेखों के रूप में प्रकाशित की जाती है, इसमें कहानी, नाटक, कविताएँ आदि के तहत लोकप्रिय सामग्री प्रकाशित की जाती है। यह बुलेटिन राष्ट्रीय बाल साहित्य केन्द्र से जुड़े पाठक मंचों को निःशुल्क वितरित किया जाता है। पत्रिका का मेल आई-डीः-nbtindia@ndb.vsnl.net.in है।

अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) से बच्चों की प्रसिद्ध त्रैमासिक बाल पत्रिका 'बालप्रहरी' का प्रकाशन वर्ष 2004 से बाल साहित्य में मुख्य भूमिका निभाने वाले संपादक श्री उदय किरौला जी द्वारा किया जा रहा है। बालसाहित्य के क्षेत्र में किरौला जी को 'बाल साहित्य सम्मान, ज्ञान-विज्ञान सम्मान, संपादक शिरोमणि सम्मान से सम्मानित किया

जा चुका है। इस पत्रिका में कहानी, कविता, जानकारी, प्रतियोगिताएँ एवं स्थायी स्तंभ के तहत सूडोकू, चुटकुले, क्या आप जानते हैं?, अंकों से बनाओ चित्र, पुस्तक समीक्षा, अंक पहेली, खोजबीन, रंग भरो, वर्ग पहेली, अनमोल वचन, पहेलियाँ, बालप्रहरी समाचार आदि के तहत प्रकाशित सामग्री बालकों के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। पत्रिका का मेल आई-डीः-blalprahri@gmail.com तथा इसकी बेवसाइट www.blalprahri.com है। दूरभाष क्रमांक 09412162950, 09557619107 इस पत्रिका के अलावा भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा जन सहयोग से प्रकाशित एक अन्य मासिक बाल पत्रिका 'ज्ञान विज्ञान बुलेटिन' का प्रकाशन भी पिछले 15 वर्षों से लगातार किया जा रहा है। लगभग 12 पृष्ठीय इस पत्रिका में विज्ञान, जनविज्ञान, महिला मुद्दों एवं सम-सामयिक विषयों पर केन्द्रित आलेख प्रकाशित किये जाते हैं। पत्रिका का मेल आई-डीः-bulatingv123@gmail.com है।

स्नेहलतागंज, इन्दौर, मध्य प्रदेश से बाल मासिक पत्रिका 'चिरैया' का प्रकाशन किया जाता है। इस पत्रिका के प्रधान संपादक श्री तपन भट्टाचार्य एवं संपादिका बेला जैन जी है। यह पत्रिका बच्चों में ज्ञान-विज्ञान की जानकारी बढ़ाने का भरपूर मनोरंजन का साधन है। इस पत्रिका में पंचतंत्र की कविताएँ, कहानियाँ, स्तंभ पक्षी जगत, हिंदी बालविज्ञान पर आलेख, बालगीत, पहेलियाँ आदि के तहत प्रकाशित जानकारी बच्चों को लुभाती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-chiraiyaa@rediffmail.com है। पत्रिका की एक प्रति का शुल्क 10 रु., वार्षिक सदस्यता शुल्क 100 रु. है।

उपर्युक्त दी गई जानकारी के अलावा भी अन्य बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है। स्थानाभाव के कारण उनकी विस्तृत जानकारी यहाँ नहीं दी जा रही है। इधर कई पत्रिकाएँ आर्थिक परेशानियों के कारण बंद भी हो गई हैं। इनमें प्रमुख रूप से एम.पी. नगर, भोपाल से मासिक पत्रिका 'स्नेह'। वन्या प्रकाशन, श्यामला हिल्स, भोपाल से मासिक पत्रिका 'समझ झरोखा'। सिक्किम से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'बाल दर्पण'। चेन्नई से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'चंदामामा'। नई दिल्ली से ही 'संस्कारम्' मासिक बाल पत्रिका। रायपुर (छत्तीसगढ़) से मासिक बाल पत्रिका 'दुलारा नन्हा आकाश'।

केशव नगर कॉलोनी, सीतापुर रोड़, लखनऊ से बाल कल्याण के लिए बड़ों की पत्रिका 'बाल साहित्य समीक्षा' शीर्षक से श्रीमती नीलम राकेश जी के कुशल संपादन में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका पिछले 37 वर्षों से डॉ. कृष्णचन्द्र तिवारी 'राष्ट्रबंधु' जी के संपादन में लगातार प्रकाशित हो रही थी, परंतु तिवारी जी के अचानक देहावसान के कारण कुछ समय के लिए यह पत्रिका बंद भी हो गई थी। वर्तमान में लखनऊ निवासी बालसाहित्यकार श्रीमती नीलम राकेश जी इसके संपादन का दायित्व बखूबी निभा रही है। जैसा कि इस पत्रिका के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें बाल पत्रिकाओं की समीक्षा, बालसाहित्य की पुस्तकों की समीक्षा, बालसाहित्य संगोष्ठियों की जानकारी

प्रमुख रूप से प्रकाशित की जाती रही है। इसके अलावा बालगीत, बाल कविताएँ, बाल आलेख भी इसमें समुचित स्थान पाते है। ऊधमसिंह नगर (उत्तराखंड) से मासिक पत्रिका 'बाल साहित्य की धरती' का प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के संपादक श्री रावेन्द्र कुमार रवि है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस पत्रिका के कुछ अंक निकलकर बंद हो गई। परन्तु जो भी अंक निकले वह बाल साहित्य में अत्यधिक लोकप्रिय रहे। यह पत्रिका वर्ष 2017 से प्रकाशित होना शुरू हुई थी। कहा जा सकता है कि पत्रिका का लोकप्रिय होना व उसको प्रकाशित करते रहना दोनों अलग-अलग बात है। उपरोक्त पत्रिकाएँ अपनी लोकप्रिय सामग्री के कारण बाल साहित्य में अपनी पहचान बनाये रखने में कामयाब हुई, परन्तु आर्थिक तंगी से यह पत्रिकाएँ भी बच न सकीं। अतः वर्तमान में इन पत्रिकाओं का प्रकाशन अभी स्थगित है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बाल पत्रिकाओं ने समय-समय पर बाल विशेषांकों का भी प्रकाशन किया। ये अंक भी किसी ऐतिहासिक धरोहर से कम नहीं हैं। इन विशेषांकों में सर्वप्रथम हरियाणा साहित्य अकादमी की मासिक पत्रिका 'हरिगंधा' के सितंबर 2017 अंक की चर्चा होनी चाहिए। इस विशेषांक में पत्रिका ने धरोहर, काव्य खण्ड, कथा खण्ड, नाटक खण्ड, विविध खण्ड, चिंतन खण्ड आदि के तहत 100 पृष्ठ की इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री किसी के लिए भी शोध का विषय हो सकती है। पत्रिका का मेल आई-डीः-harigandhapatika@gmail.com है।

'ज्ञान विज्ञान बुलेटिन' मासिक पत्रिका का जून 2016 अंक बालसाहित्य विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। लगभग 40 पृष्ठीय बहुरंगी पत्रिका में कुल 22 आलेख, 18 कविताएँ, विशेष व्यक्तित्व पर एक आलेख और देशभर से प्रकाशित मुख्य बाल पत्रिकाओं की जानकारी संकलित की गई थी। नवंबर 2010 से प्रतिवर्ष 'ज्ञान विज्ञान बुलेटिन' का बालसाहित्य विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। इसी क्रम में जून 2016 का अंक भी उसी की एक कड़ी के रूप में देखा जाना उचित होगा। पत्रिका का मेल आई-डीः-bulatingv123@gmail.com है।

बाल मासिक पत्रिका 'चिरैया' का जून 2016 का अंक भी बाल साहित्य विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के प्रधान संपादक श्री तपन भट्टाचार्य एवं संपादिका बेला जैन जी है। यह पत्रिका बच्चों में ज्ञान-विज्ञान की जानकारी बढ़ाने का भरपूर मनोरंजन का साधन है। इस विशेषांक में कुल चार कहानी, सात कविताएँ, और विभिन्न जानकारी देते नौ आलेख है। पत्रिका का मेल आई-डीः-chiraiyaa@rediffmail.com है। पत्रिका की एक प्रति का शुल्क 10 रु., वार्षिक सदस्यता शुल्क 100 रु. है। इन विशेषांकों के अलावा भी कई अन्य पत्रिकाओं ने समय-समय पर बाल साहित्य पर केन्द्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया।

समासतः कहा जा सकता है कि बाल साहित्य के प्रकाशन में समाचार पत्रों एवं बाल पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उपरोक्त आलेख में केवल उन्हीं

समाचार पत्रों एवं बाल पत्रिकाओं का विवरण दिया गया है, जो आज प्रत्येक पाठकों के समक्ष बाल साहित्य के रूप में कहीं न कहीं अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं। चूँकि आज देश से हजारों की संख्या में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया जा रहा है, इस कारण समस्त दैनिक समाचार पत्रों की जानकारी यहाँ दे पाना संभव नहीं है। इसके अलावा वर्तमान समय में देश से विभिन्न विधाओं एवं विभिन्न भाषाओं में हिंदी साहित्य की पत्रिकाएँ पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक रूप से प्रकाशित हो रही है, जिनके लिए पाठक वर्ग को एक लंबा इंतजार करना पड़ता है; परन्तु समाचार पत्र पाठकों की इसी कमी को पूरा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे है। समग्रतः कहा जा सकता है कि बाल साहित्य के विकास में इन समाचार पत्रों की भूमिका का महत्व पत्रिकाओं की अपेक्षा कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है।

असत्य और उससे उत्पन्न दोष

अंकुश्री

सुबह जागने से लेकर रात सोने तक मनुष्य तरह-तरह के लोगों से मिलता है और तरह-तरह के विषयों पर तरह-तरह की बातें करता है। स्वयं द्वारा या दूसरों द्वारा की गई सारी बातें सही हों - सबों के साथ ऐसा आवश्यक नहीं है। कुछ लोगों द्वारा तो असत्य बातें ही अधिक कही जाती हैं और समाज में कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जो बात-बात में असत्य बोलते हैं। कुछ लोगों की कुछ बातें असत्य होती हैं। लेकिन कुछ ऐसे लोग हैं, जो असत्य बातों के प्रयोग से परहेज करते हैं।

असत्य बोलने का कोई एक कारण नहीं होता। असत्य बोलने वाला कई कारणों से असत्य बोल सकता है। कुछ लोग स्वभाववश असत्य बोलते हैं, कुछ लोग दबाववश असत्य बोलते हैं और कुछ लोग अभाववश असत्य बोलते हैं। अज्ञानतावश भी असत्य बोला जा सकता है।

स्वभाववश असत्य बोलने वाले बात-बात में असत्य बोलते हैं। सत्य और सामान्य बातें उन्हें बड़ी हल्की लगती हैं। इसलिए अपनी निम्न से निम्नतर बातों को भी ऐसे लोग नमक-मिर्च लगाकर भारी-भरकम बनाने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग हर घटना या प्रसंग में अपनी उपस्थिति या उससे संबंध जोड़ने का प्रयास करते हैं, जिस कारण उन्हें अनावश्यक रूप से असत्य का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे लोग सत्य बोलने से जहाँ काम चल जाता है, वहाँ भी असत्य का ही प्रयोग करते हैं।

कुछ लोग दबाववश असत्य बोलते हैं। ऐसे लोग दूसरे के प्रेमजन्य दबाव से तत्कालिक तौर पर किसी बात को स्वीकार तो कर लेते हैं, मगर बाद में उसे पूरा नहीं कर पाते, जिससे उनकी बात असत्य हो जाती है। दबाव प्रेमजन्म की तरह भयजन्य भी हो सकता है। लेकिन सभी लोग दबाववश असत्य बोलने लगें - ऐसी बात नहीं है।

अंकुश्री : प्रेस कॉलोनी, सिदरौल, नामकुम, रांची (झारखण्ड)-834 010, मो. 8809972549, E-mail : ankushreehindiwriter@gmail.com

अभाववश असत्य बोलने वाले अपनी कमी को ढंकने के लिए असत्य का सहारा लेते हैं। रिश्ता और समाज में ऐसे लोग अपने अभाव को छिपाने के लिए असत्य बोलते हैं। किन्तु हर अभावग्रस्त ऐसा नहीं करता। बल्कि ऐसा देखा गया है कि अभावग्रस्त या गरीब लोगों द्वारा भी असत्य का प्रयोग कम किया जाता है। इसका कारण ऐसे लोगों द्वारा पाप-पुण्य में अधिक विश्वास किया जाना भी हो सकता है।

कुछ लोग ज्ञान के अभाववश असत्य बोलते हैं। अर्थात् अपने कथन की उन्हें जानकारी नहीं होती है। वे अनावश्यक रूप से कुछ बोलने की आदत की मजबूरी के कारण अज्ञानतावश ऐसे असत्य का प्रयोग कर डालते हैं।

असत्य चाहे जिस कारण से बोला जाए, मगर उसका उद्देश्य एक नहीं होता। कुछ लोग स्वार्थ के लिए असत्य बोलते हैं तो कुछ लोग परमार्थ के लिए। जबकि कुछ लोग व्यर्थ के लिए असत्य बोलते हैं।

कुछ लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए गलत-सही कोई काम करने से नहीं हिचकते। ऐसे लोग येन-केन-प्रकारेण अपना स्वार्थ पूरा करने का प्रयास करते हैं और इस क्रम में सत्य-असत्य का कोई भेद नहीं रखते हैं।

ठीक इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपने लिए कोई गलत काम नहीं करते, लेकिन दूसरे की भलाई के लिए आवश्यकता पड़ने पर असत्य बोलने से भी नहीं हिचकते। ऐसे लोग दूसरों के कल्याणार्थ असत्य का प्रयोग करते हैं।

लेकिन समाज में कुछ लोग ऐसे हैं, जो व्यर्थ का असत्य बोलते हैं। वे बिना सोचे हुए, अनायास ही असत्य बोलते रहते हैं। अपना कार्य सिद्ध करने या किसी को धोखा देने अथवा किसी को लाभ पहुँचाने का उनका उद्देश्य नहीं होता। फिर भी ऐसे लोग असत्य का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः असत्य बोलना उनकी आदत-सी हो जाती है और वे अनायास ही असत्य बोलते चले जाते हैं।

असत्य चाहे किसी भी कारण या उद्देश्य से बोला जाये, बोलने वाले के चेहरा पर इसका अभाव स्पष्ट हो जाता है। असत्यवादी व्यक्ति आत्मविश्वासी भी कम होता है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग बड़े आत्मविश्वास से असत्य बोलते हैं। यहाँ तक कि वे सत्यवादियों का आत्मविश्वास भी डिगा देते हैं, किन्तु आत्मविश्वासपूर्ण बातें करनी और चेहरा पर आत्मविश्वास दिखना, दोनों दो बातें हैं।

असत्यवक्ता को असत्य बोलने की आत्मग्लानि अवश्य होती है। आत्मग्लानि का एक और बड़ा कारण है असत्य का पकड़ा जाना। अर्थात् असत्य का प्रयोग सिद्ध हो जाने से सुनने वाले की नज़र में असत्यवक्ता का विश्वास उठ जाता है और इससे उस व्यक्ति की समाज में जो पहचान बनती है, वह निश्चित रूप से अच्छी नहीं होती।

एक बार अपराध कर देने के बाद उसका सिलसिला समाप्त नहीं होता। अपराधी उसी के जाल में फंसता जाता है। उसी तरह एक बार असत्य बोल देने के बाद असत्य बोलने का सिलसिला समाप्त नहीं होता है और असत्य बोलने वाला अपने

ही असत्य भाषण के जाल में फंसता जाता है। एक असत्य को छिपाने के लिये कई असत्य बोलने पड़ते है। कभी-कभी एक असत्य बोलने से उत्पन्न स्थिति बड़ी गलतियों को जन्म दे देती है। उसके बाद ऐसी गलतियों का सिलसिला चल पड़ता है।

जिस घर में बड़े लोग असत्य का प्रयोग करते हैं, उस घर में बच्चे भी असत्य बोलने लगते हैं। उस घर में असत्य बोलने का प्रचलन-सा हो जाता है। बात-बात में असत्य का प्रयोग करने से उस परिवार का समाज में महत्त्व खत्म हो जाता है। ऐसा परिवार आर्थिक रूप से संपन्न होने के बावजूद शीघ्र ही विपन्नता की ओर अग्रसर हो जाता है और धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोने लगता है।

समर्थ व्यक्ति में सारे नियम-कानून और सुख-सुविधाओं का समावेश होता है। इसलिये आम आदमी को समर्थ व्यक्ति से कभी तुलना नहीं करनी चाहिए। आम आदमी या असमर्थ व्यक्ति अपनी सत्यवादिता के बल पर ही समाज में टिक पाता है। सत्य उसकी सबसे बड़ी पूँजी होती है। सत्य-प्रयोग से थोड़ी देर के लिए उसे परेशानी हो सकती है। किन्तु वास्तविक रूप से जीत उसी की होती है और आत्मविश्वासपूर्ण जीवन जीने से उसके चेहरे पर चमक और तेज दिखाई देता है।

असत्य से उत्पन्न सारे दोष के निराकरण का एक ही मार्ग है। वह है सत्य, सत्य और सिर्फ़ सत्य; क्योंकि सत्य का कोई विकल्प नहीं होता।

विपन्न को संपन्न बनावे
यह सत्य का चमत्कार है
संपन्न को विपन्न बनावे
यह असत्य का उपहार है।

मानवतावादी छत्रपति शिवाजी

प्रो. जयश्री भास्कर वाडेकर

हिंदी वीर काव्य का संबंध भारतीय इतिहास से है। हिंदी साहित्य में वीर रस की कविता का उत्थान कुछ काल रूपों में मिलता है। प्रथम उत्थान आदिकालीन वीर प्रशस्तियों का है। द्वितीय उत्थान छत्रपति शिवाजी महाराज और छत्रसाल जैसे वीर नायकों के उत्थान के साथ होता है। इस वीर कविताओं में वीर और प्रीति का मिश्रण नहीं, बल्कि ऐतिहासिक वीर काव्य है। कविता का विषय राष्ट्रप्रेम ही है। सामान्यतः वीरों का व्यक्तित्व दया, धर्म, युद्ध एवं दान उनके विविध उत्साहवर्धक कार्य ही वीर काव्य के अवलंबन हैं। इसी दृष्टि से वीरों का चरित्र-चित्रण, वीरगाथाएँ, प्रशस्तियाँ, युद्ध वर्णन और वीरों के कार्यकलाप संबंधी प्रसंग का वर्णन वीर काव्य के अंतर्गत आता है। ये ओजस्वी कविता है, जिसमें राष्ट्र उत्थान की भावना प्रबल होती है।

भूषण के साहित्य में चित्रित छत्रपति शिवाजी महाराज की प्रतिमा का चित्रण करते समय शिवाजी महाराज की बाल्यावस्था, शाइस्ताखां की दुर्दशा, अफजलखान वध, सूरत की लूट, आगरा कैद से छुटकारा, सिंहगड़ विजय, दानवीर, युद्धवीर, शिवाजी की शत्रु पर धाक, शत्रु के मन में आतंक आदि विभिन्न स्थानों का सुचारू और प्रभावी वर्णन दिखाई देता है। छत्रपति शिवाजी के गुणों पर मुग्ध और कर्मो से प्रभावित होकर उनके कर्मों की सार्थकता को समझते हुए, युग की माँग के अनुयप छत्रपति शिवाजी की प्रतिमा वर्णन इस पंक्ति में करते हैं।

> *''इंद्र जिमि जंभ पर बाढ़व सुअंभ पर रावण संदर्भ पर रघुकुल राज है।*
> *पौन बारिबाह पर शंभू रतिनाह ज्यों सहसबाहु पर राम द्विवराज है।*
> *दावा द्रुम डंडु पर चीता म्रगझुंड पर भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है।*
> *तेज तन अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों म्लेच्छबंस पर सेर सिवराज है''।*

हिंदी साहित्य के साहित्यकारों ने कवि भूषण का नाम नवरत्न में परिगणित किया है। भारत के इतिहास में भूषण का नाम सदा अमर रहेगा। अपनी वीर काव्य

प्रो. जयश्री भास्कर वाडेकर, श्रीमती दानकुंवर महिला महाविद्यालय, जालना, मु.पो. जामवाड़ी, ता.जि. जालना-431203

परंपरा को अपने ओजस्वी छंदों को शृंगार कक्ष से बाहर निकालकर स्वदेश के लिए वीरता के क्षेत्र में खड़ा कर दिया आपने राष्ट्रीय ध्येयवाद के कारण कवि भूषण का काव्य रीतिकाल के बीच अपना विशेष महत्त्व प्रदान करता है। अंतसाक्ष्य के अनुसार तथा भूषण के वंशजों के कथन अनुसार कवि भूषण के जीवन परिचय के लिए इस निर्णय पर आ पहुँचते हैं कि कवि भूषण का वास्तविक नाम मनीराम ही था। लेकिन उनके विद्वत्ता के कारण चित्रकूट नरेश हृदय राम सोलंकी के पुत्र रूद्र शाह सोलंकी ने 'भूषण' उपाधि से सम्मानित किया था। जिसे भूषण लिखते हैं,

''कूल-सुलंक चित्रकूटपति साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई हृदयराम-सूत् रुद्र।''[12]

उनकी रचनाओं में शिवराज-भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक तथा स्फुट-काव्य यह रचनाएँ प्राप्त हैं और भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास उपलब्ध नहीं है कवि भूषण प्रतिभा संपन्न कवि थे। शिवाजी महाराज के गुणों पर मुग्ध होकर कवि भूषण शिवाजी महाराज के राज आश्रय में रहे। उनके दरबार के सर्वश्रेष्ठ कवि का सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ। कवि भूषण ने अपने युग की माँग को परखकर उसे अपने सशक्त वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया साहित्य के नैतिक मूल्यों की आसान नहीं है, परंतु फिर भी इस पर चिंतन किया जाए तो हमें कवि के सत्य परिस्थिति पर चिंतन करना चाहिए। कवि का सत्य वस्तु की वस्तुस्थिति के साथ पाये जाने वाले रागात्मक संबंध पर निर्भर है। अर्थात् मनुष्य के संघर्षों और अनुभूतियों में नैतिक आग्रह को जान सकते हैं। कवि भूषण के काव्य में यही नैतिक आग्रह निहित है कि देश में प्राचीन संस्कृति के मूर्त चिह्न मंदिरों का सरेआम विध्वंस हो रहा था वह बंद हो जाए और यह भी चाहते थे कि कवि भूषण अपने युग समस्या से भलीभाँति परिचित थे। उनकी रचना में शिवाजी महाराज की प्रतिमा सर्वांग रूप से अभिव्यक्त हुई जो सामाजिक सांस्कृतिक चेतना देती है।

जिस प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीरजी को वाणी का डिक्टेटर कहा है उसी प्रकार कवि भूषण अपने समय के वाणी के डिक्टेटर रहे हैं, मराठी के साथ हिंदी साहित्यकारों ने शिवाजी महाराज का चरित्रांकन करके राष्ट्र नायक के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की कवि भूषण द्वारा रचित शिव चरित्र और शिवाजी प्रेम सराहनीय हैं। उनके महान कार्य का गौरव इस प्रकार किया है कि वैश्विक आदर्श मानव का चित्रण शिवाजी महाराज के चरित्र के माध्यम से कवि भूषण ने चित्रित किया है। भूषण के काव्य में आदर्श और यथार्थ मुखरित हुआ है। डॉ. राजमल बोरा लिखते हैं, ''वह घटनेवाली घटनाओं का संबंध जनजीवन से जोड़ता है और राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए उनकी व्याख्या करता है साथ ही साथ अतीत के इतिहास से वर्तमान के

इतिहास से संबंध जोड़ने का प्रयत्न भी करता है वह उनकी तुलना करता है। इस तुलना में क्षमता और विषमता दोनों पर प्रकाश डालता है। समता में राष्ट्रीय गौरव की अभिव्यक्ति मिलती है। एक में आदर्श का भाव और दूसरे में यथार्थ का भूषण के काव्य में इतिहास को इसी रूप में अभिव्यक्त मिलती है।''[3]

भूषण ने जिसका विरोध किया और डंके साथ खुलकर विरोध किया। भूषण के युग का अध्ययन करने से उनकी चेतना का महत्त्व समझता है। बिना युग का अध्ययन किए उनका मूल्यांकन करना गलत है। उनके काव्य का अनमोल रत्न शिवाजी महाराज का यशोगान है। उनके काव्य की लाभकारिता के विषय में भूषण स्वयं लिखते हैं कि शिवाजी महाराज का चरित्रगान करके भूषण की वाणी पवित्र हो गई है।'

''पुन्य पवित्र सिवा सरजै बरम्हाय पवित्र भई बानी''[4]।

भूषण के अंदर ओजपूर्ण तड़प थी उन्होंने ओजपूर्ण वाणी से समाज पर पड़ने वाली विपत्ति को जूझने के लिए लोगों में संघर्ष की चेतना भर दी थी। भूषण की चेतना ज्ञान की विचार शक्ति है। अपने समय की अनुभूति काव्य में उभर कर आती है। वे समाज का अतीत और भविष्य से परिपूर्ण ज्ञात है। आ. रामचंद्र शुक्ल कहते हैं, ''रीति-पद्धति को लेकर वीर-काव्य लिखने वाला भूषण के समान दूसरा कवि नहीं।''[5] भूषण ने निर्भीकता और काव्य कौशल के बल पर निर्भर रहते हुए विलुप्त प्राचीनता को वीरकाव्य की धारा में पुनर्जीवित किया। कोई भी चिंतन समाज का परोक्ष या प्रत्यक्ष आकलन किए बिना प्रकट ही नहीं हो सकता। इस तथ्य के आधार पर भूषण के काव्य में राष्ट्रीयता उभर कर आयी है। भूषण का यशोगान झूठी प्रशंसा नहीं रहा, जो सच है उसी को लिखा उन्होंने औरंगजेब के धार्मिक अत्याचारों का कड़ा विरोध किया। जिससे उन्हें जातिवादी कवि की मुहर लगाने की चेष्टा की जाती है, परंतु बिना समय परिस्थिति का अध्ययन-मूल्यांकन किए बिना कहना उचित नहीं है। भूषण ने मुगल बादशाह बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा दारा विषयक छंद में उनका सम्मान किया है। भूषण ने इस्लाम धर्म का विरोध नहीं किया बल्कि औरंगजेब की नीति से अप्रसन्न होकर उसकी नीति का विरोध करते हुए इस बात का संकेत किया कि औरंगजेब उसके परदादा के नीति को भूल गया। औरंगजेब के अत्याचारी बुद्धि का विरोध किया। कवि भूषण का साहित्य सामाजिक जीवन से प्रत्यक्ष संबंध रखने वाला राष्ट्रीय साहित्य है। उदय नारायण तिवारी लिखते हैं, ''भूषण ने अपनी कविता में सबसे पहले हिंदू नरेशों के सहयोग और आपस की फूट के विनाशकारी परिणाम की ओर ध्यान आकर्षित किया था। वह वीरता के पुजारी थे और अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा वे इसी दृष्टिकोण से करते थे। उनकी प्रशंसा में

प्रमुख रूप से देश की दशा, देशद्रोहियों का दमन और वीर पूजन के ही भावों का प्राकृतिक और शक्तिशाली रूप मिलता है।''[6]

भूषण के शब्दों में, ''आपस की फूट हितें सारे हिंदूवान टूटे टूटयो कुल रावन अनीति अति करतें''।[7]

भूषण का भारतीय स्वतंत्रता की भावना का विकास करने में बड़ा योगदान रहा है। हिंदी साहित्य में कवि भूषण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि भूषण के काव्य में ओज का रूप दर्शनीय है। इसीलिए इन्हें राष्ट्रीय कवि के दायरे में रखा जाता है। कवि भूषण ने छत्रपति शिवाजी की वीरता का वर्णन युद्ध वर्णन द्वारा किया है। कवि भूषण का काव्य शुद्ध वीर काव्य है। शिवाजी महाराज को राम का प्रतीक और औरंगजेब को रावण का प्रतीक मानकर स्वतंत्रता की चेतना दी है।

भूषण का युद्ध वर्णन स्थान, नाम, इतिहास से संबंध रखनेवाला सत्य का दर्शन हैं। डॉ. राजमल बोरा ने लिखा है, ''भूषण का काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से मूल प्रामाणिक ग्रंथों में माना जाना चाहिए उसमें पाए जाने वाले ऐतिहासिक तथ्य तत्कालीन मूल्य उपलब्ध ग्रंथों से बहुत हद तक साम्य रखते हैं।''[8] भूषण के साहित्य में युग का इतिहास मुखरित हुआ है। भूषण की दृष्टि अपने सामाजिक यथार्थ पर रही भूषण के काव्य में ऐतिहासिक दृष्टि से घटनाओं का अध्ययन और अध्ययन प्रस्तुत निष्कर्षों का निरूपण करने का प्रयास किया गया है, जिसे अफ़ज़ल खान का वध, शाईस्ताखां की दुर्दशा, शिवाजी महाराज और औरंगजेब की भेंट, साल्हेर युद्ध तथा पन्हाले की विजय प्रधान घटनाओं की ऐतिहासिक मीमांसा की गई है; भूषण का काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से मूल प्रामाणिक ग्रंथों में माना जाना चाहिए। कवि भूषण की दृष्टि अपने वीर नायक पर अत्याधिक केंद्रित रही और सर्वत्र वे ही दिखाई देते हैं। मानो सब कुछ वही है—सेनापति, मंत्री और राजा भी, अतः शिवाजी महाराज के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने वाले व्यक्ति के नाम नहीं मिलते। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वीर पुरुषों की यशोगाथा ही किसी देश का उत्थान करती है। कर्म समाज का पोषक है, अतः वीर काव्य का ध्येय समाज का उद्धार होता है। व्यक्ति ने संघर्ष काल में सबक लिया है। डॉ. ताराचंद लिखते हैं—''हमारे उद्देश्य, आदर्श, मूल्य और परमार्थ इतिहास में प्रकट होते हैं। व्यक्ति और समाज के जीवन में हमारी इच्छाओं और आकांक्षाओं में, हमारी चेष्टाओं में, हार-जीत में, उन्नति पतन में इनका प्रादुर्भाव होता है। इतिहास का ज्ञान आध्यात्मिक प्रेरकों का ज्ञान है। इतिहास को जानना अपने को जानना है और इस जानने से बढ़कर किसी का ज्ञान मूल्य नहीं इतिहास की खोज आत्मा की जिज्ञासा है।''[9]

भूषण का काव्य केवल हिंदी साहित्य तक सीमित ना होकर संपूर्ण भारतीय संस्कृति वीरता एवं राष्ट्रीयता का बखान करने वाला एवं युगों-युगों तक मानवता के

लिए प्रेरणादायी संदेश देने वाला है। शिवाजी महाराज की साहित्यिक प्रतिमा के माध्यम से राष्ट्रीय चरित्र गठन के अनेक मूल्यों को हम भारतीयों में संक्रमित कर सकते हैं। राष्ट्रभक्ति, स्वतंत्र प्रेमी, मातृभूमि प्रेमी, नैतिकता, चतुर शासक, धार्मिक उदारता, गुणग्राहकता, दूरदर्शी शासक आदि गुणों का योगदान राष्ट्रीय चरित्र गठन के लिए भूषण के काव्य में छत्रपति शिवाजी महाराज के उदात्त गुण प्रेरणा स्रोत रहे हैं। जो भारत के जनमानस के मन में सत्कार्य करने के लिए उत्साह और प्रेरणा निर्माण करेगा। सर्वगुण संपन्न शिवाजी महाराज के चरित्र वर्णन भूषण के शब्दों में–

''सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि भूषण होत है आदर जाओं।
सज्जनता और दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा में।
दाना कृपानहु को करीबों करीबों अभै दीनन का बर जामें।
साहससों रूटेक बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा में।''[10]

समस्त मानव जाति वास्तव में मानव धर्म की अनुयायी है। तो फिर एकसूत्रता, समानता इसमें होनी चाहिए, आतंकवाद क्यों? कारण, हम अपने यही मानव धर्म की धारणा को अलग-अलग राहों पर लेकर अलग-अलग नाम दे रहे हैं। धर्म के संस्थापक भी एकता की माला पिरोकर रखने का संदेश देते आ रहे हैं। फिर वह आतंकवाद की समस्या समस्त विश्व में हानि पहुँचा रही है। भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी ने मालदीव यात्रा के दौरान यह विचार जताया कि समस्त विश्व इस आतंकवाद से त्रस्त है इस त्रासदी का उन्मूलन करना है, तो विश्व सम्मेलन की आवश्यकता है। ऐसे सम्मेलन में विषय का मंथन होकर मानव धर्म को आबाधित रखा जा सकता है। मनुष्य को भी 'मानव धर्म' का संकल्प करना चाहिए कि हम जिस वर्तमान में धर्म की आस्था रखते हैं, उसके कड़ी में मानव धर्म को समावेशित करें और गर्व से कहें कि हम मानव हैं।

शिवाजी महाराज का धर्म के प्रति दृष्टिकोण संकुचित न होकर व्यापक था। शिवाजी महाराज हिंदू, मुस्लिम से परे एक व्यापक मानव धर्म की संकल्पना करते थे– जिस प्रकार सभी नदियाँ अंत में सागर में मिलती हैं, उसी प्रकार सभी धर्म एक ही ईश्वर में विलीन होते हैं। शिवाजी महाराज का मानव धर्म का उदाहरण जालना महाराष्ट्र शहर को उन्होंने अंतिम भेंट दी थी। जालना में जालुल्लाशाह और बाबुल्लाशाह के दर्गा में चार नगाड़े भेंट रूप में देखकर मानव धर्म का आदर्श समाज के सामने प्रस्फुटित करके सांप्रदायिक सद्भावना उजागर होती है। कवि भूषण ने बहुत सुंदर वर्णन किया है।

''सोहत उदारता और सीलता मैं सौ कंचन मैं मृदुता सुगंधाता बखानी मैं''[11]।

अर्थ-शिवाजी की उदारता और सुशीलता सोने में सुगंध और कोमलता की तरह शोभित है।

यदुनाथ सरकार ने छत्रपति शिवाजी महाराज के संबंध में मानव धर्म में उनका स्थान निर्धारित करते हुए लिखा है, ''शिवाजी का चरित्र अनेक सद्गुणों से भरा था। उनकी मातृभक्ति, संतान प्रीति, इंद्रिय-निग्रह, धर्मानुराग, साधु-संतों की प्रति भक्ति, विलासवर्जन, श्रमशीलता और सब संप्रदायों के प्रति उदारभाव उस युग के अन्य किसी राजवंश में ही नहीं अनेक गृहस्थ घरों में भी अतुलनीय था। वे अपने राज्य की सारी शक्ति लगाकर स्त्रियों की सतीत्व-रक्षा करते, अपने फौज की उद्दंडता का दमन करके सब धर्मों के उपासना-घरों और शास्त्रों के प्रति सम्मान दिखलाते और साधु-संतों का पालन पोषण करते थे। वह स्वयं निष्ठावान भक्त हिंदू थे, भजन और कीर्तन सुनने के लिए अधीर रहते थे। युद्ध-यात्रा में कहीं कुरान मिलने से उसे नष्ट या अपवित्र ना करते बल्कि बड़े यत्न से रख देते और पीछे किसी मुसलमान को दान कर देते थे। मस्जिद और इस्लामी मठ (खानकाह) पर वे कभी आक्रमण नहीं करते थे। कट्टर मुसलमान इतिहासकार खफीखां ने भी शिवाजी का उल्लेख करते समय लिखा था—'काफिर जहन्नुम में गया' परंतु उसने भी शिवाजी के सच्चरित्रता, स्त्री को माता के समान मानना, दया दाक्षिण्य और सब धर्मों को समान प्रतिष्ठा से देखना, आदि दुर्लभ गुणों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।''[12]

भूषण के काव्य का उद्देश्य अतीत का पुनर्निर्माण करना वर्तमान काल की समस्याओं का हल अतीत के संदर्भ में प्रस्तुत करना राष्ट्रप्रेम जागृत करना चरित्र नायक को न्याय देना है। कवि भूषण शिवाजी महाराज के स्वाभिमानी गुणों का वर्णन आगरा कैद, से छुटकारा वर्णन में बड़े सुंदर ढंग से करते हैं। औरंगजेब के सामने सत्यवादी शिवाजी महाराज के श्रद्धा स्थान माँ भवानी, शिव शंकर, पिता शाहजी रहे हैं। इसके माध्यम से सामाजिक राष्ट्रीय चेतना दी है। प्रतिभामुखी कवि और आचार्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत भूषण के काव्य में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष प्रबल रहा है। हिंदी साहित्य में भूषण का महत्त्व वीर रस के कवि के नाते हैं। उन्होंने वीर रस से परिपूर्ण काव्य लिखकर राष्ट्रभक्ति की एक नई ऊर्जा स्वामी भक्ति के माध्यम से प्रदान की। वीररस में रौद्र और भयानक रस का इन्होंने अधिक वर्णन किया है। भूषण के काव्य में प्रधान रूप भावात्मकता की रसव्यंजना में वीररस छुपा हुआ है। भूषण का काव्य वीर रसात्मक और आनंद की साधनावस्था काव्य है। परंतु भूषण का काव्य अलंकार प्रधान माना जाता है। भूषण का काव्य राष्ट्रीय उत्थान के लिए लिखा गया है इसीलिए वह शाश्वत और अमर है। इस प्रकार भूषण का राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। उन्होंने युगीन चित्र सक्षता के साथ अंकित किया है। साहित्यकार की

भूमिका हमेशा परिस्थिति से कटकर नहीं रही है। भूषण ने तत्त्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, दुरावस्था का चित्रण काव्य में किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भूषण के संबंध अपने इतिहास ग्रंथ में लिखा है—''भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपनी वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन में तत्पर, हिंदू धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिंदू जनता के हृदय से भूषण के वीर रस के उदगार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुई। भूषण की कविता-कवि-कीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा। उस कवि की कृति तब तक बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी।''[13] वीर काव्य में कर्मों की परिभाषा युग के संदर्भ में होती है, कर्म समाज का पोषक है, अतः वीर काव्य का उद्देश्य समाज का उद्धार होता है। हमारे देश में सामाजिक विभिन्नता के साथ-साथ प्रांतीयता और भाषा संबंधी वाद राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। वस्तु-स्थिति यह है कि एक व्यक्ति दूसरी व्यक्ति के निकट भाषा के माध्यम से ही आता है। हमारे विशाल भारत के लिए एक राष्ट्रीय भाषा होना परम आवश्यक है। खेद की बात है कि तमिलनाडु राज्य में हिंदी भाषा का वाद उद्धृत हो गया था, लेकिन परिस्थिति ऐसी निर्माण हो गई कि हम राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा संबंधी वाद विवाद का अंत करके संपूर्ण राष्ट्र के लिए केवल एक ही भाषा को स्वीकार करें। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसके भाषा और उसके संस्कृति से होती है। वर्तमान में हिंदी भाषा दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुकी है। हिंदी भाषा ने न केवल भारत की अपितु विश्व की अनेक भाषाओं के शब्दों से अपने आपको परिपूर्ण किया और आज भी अनेक शब्दों को अपने अंदर समाहित कर रही है। कवि भूषण के काव्य में सभी भाषा का आदर हुआ है। भारतीय संस्कृति के अनुसार भूषण कालीन में जो जीवन दर्शन स्वीकृत था उसी में भूषण ने काव्य रूपन किया है। भूषण ने संस्कृति के समर्थक और रक्षक का गुणस्तवन किया है। और उस संस्कृति के विनाशक का विरोध किया है। वीरता का आदर्श और रूप युगानुरूप बदलते रहे हैं। और उनकी अभिव्यक्ति वीर काव्य में समय-समय पर होती रही है। वीर काव्य के नायक युग की सभ्यता और संस्कृति के प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं।

साहित्य किसी संस्कृति का ज्ञान कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी तरह भारतीय सभ्यता और मूल्य साहित्य में सुरक्षित है और वर्तमान पीढ़ी इनका पालन कर सकते हैं। जब हमारा देश अंग्रेजी हुकूमत का गुलाम था तब साहित्यकारों की लेखनी की ओजस्विता राष्ट्र के पूर्ण गौरव और वर्तमान दुर्दशा पर केंद्रित थी। इस दृष्टि से साहित्य का महत्त्व वर्तमान में भी बना हुआ है। आज के साहित्यकार वर्तमान

भारत की समस्याओं में पर्याप्त स्थान दे रहे हैं। हर देश की भाषा उनके संस्कृति और सभ्यता को पहचान देती है। साहित्य समाज का दर्पण है, इसीलिए यह प्रगति के लिए हमेशा महत्त्वपूर्ण रहेगा।

कवि भूषण ने अपने काव्य में छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल को काव्य का चरित्र नायक बनाया है। साथ ही विशिष्ट चारित्रिक गुणों और कार्यकलापों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। शिवराज भूषण उनकी प्रामाणिक कृति मानी जाती है। इसमें शिवाजी महाराज का शौर्य, पराक्रम, बल व यश वर्णन किया है। शिवा बावनी एक संकलित काव्य जिसमें शिवाजी के जीवन की अनेक घटनाओं को संजोया गया है। सभी घटनाओं के वर्णन में वीर रस का प्रकटीकरण हुआ है। शत्रु का आक्रमण दिनों की दशा उसकी ललकार हिंदू धर्म की दुर्दशा आदि वर्णन को पढ़कर पाठक के मन में जोश जागृत होता है। वीर रस के चार प्रकार युद्धवीर, दया वीर, दानवीर और धर्मवीर के वर्णन में प्रधानता है। भूषण की भाषा इतनी उत्कृष्ट है कि वह पढ़ने वाले के मर्म स्थल को छू लेती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भूषण केवल रीति काल में ही नहीं संपूर्ण हिंदी साहित्य में अद्वितीय है।

महात्मा गाँधी का साहित्य विषयक चिन्तन

डॉ. विश्वास पाटिल

गाँधी जी की भाषा में साहित्य धर्म और संस्कृति का सारांश है। वे लिखते हैं कि कबीर, ज्ञानेश्वर, त्यागराज, नरसी मेहता इन साधु सन्तों की भाषा हमेशा-हमेशा के लिए सादगी-भरी और आसान ही है ऐसा कहना साहस भरी बात होगी। ऐसा होते हुए भी वे कौन से कारण हैं, जिनके आधार पर यह साहित्य जन-जन का कण्ठहार बन पाया? इसका कारण है इसकी सरल सहज ऋजु भाषा यह भाषा ऋजु अन्तःकरण की भाषा है। यही आम आदमी तक पहुँच पाती है। आम आदमी तक पहुँचने के लिए न केवल भाषा का विवेक अपितु अन्तःकरण की आर्द्रता और तरलता भी आवश्यक है। पारदर्शिता की आवश्यकता है। हलवाहे तक पहुँचने वाली भाषा का मर्म उसके रस्से तक पहुँचना नहीं उसके हृदय तक पहुँचना है। उसे छू लेना हैं। आज भी गाँव-गाँव में सूर, तुलसी, मीरा और कबीर के समान ही जन कवियों की कविता गई जाती है। गाँवों की चौपालों पर और समारोहों में इनकी रचनाएँ भक्ति भाव पूर्वक सुनी-गायी जाती है। आम आदमी तक सन्त साहित्य पहुँचता है, तो वह प्रौढ़ जनों के लिए लिखे गए साहित्य के समान केवल शब्दों का जादू ही नहीं है यह उनकी मान्यता आज अनेक सन्दर्भो में परखकर देखने योग्य मानी जा सकती है। आसान और सरल सादगी भरा जीवन जिस प्रकार से वरेण्य होता है ठीक उसी प्रकार से साहित्य भी जीवन को और जीवनवादियों को प्रफुल्लित करता है। गाँधी जी ने अत्यन्त सुन्दर शैली में संस्मरणात्मक लेखन किया है। वह साहित्य की स्थायी निधि है। उनके द्वारा की गई साहित्य सेवा अनेक अर्थों में विशिष्ट मानी जा सकती है। गाँधी जी के हिन्दी साहित्य पर प्रभाव के सम्बन्ध में अनेक गन्थों का स्वतन्त्र रूप से प्रणयन हुआ है। श्रीकान्त जी जोशी ने इस सन्दर्भ में माखनलाल जी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है–

''माखनलाल जी अनेक अर्थो में गाँधी जी का और बहुत अर्थो में शुद्ध वैष्णवी कृच्छ्र साधना के पथ का अनुसरण करते हैं। लेकिन कोरा अनुसरण करने वाले वे नहीं

डॉ. विश्वास पाटिल, 34 बी कृष्णांबरी सरस्वती कॉलोनी, शहादा (नन्दुरबार)-425409 (महाराष्ट्र)

है। उनका अपना विवेक सत्याचरण का प्रयोग करता रहता है।'' (माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली प्रथम खण्ड पृष्ठ 28)

माखनलाल जी पर पड़े गाँधी प्रभाव का एक दृश्य परिणाम उनके इस चिन्तन में दिखाई देता है माखनलाल जी लिखते हैं—''जो ऐसी भाषा का लगातार उपयोग करते हैं, जिसे लिखते ही कठिन होने के कारण जन जीवन में पहुँचने के पंख तोड़ दिए जाते हों, ऐसी रचनाएँ चाहे जितनी श्रेष्ठ हों, वे जन-जीवन से दूर और कभी-कभी निरुपयोगी सांस्कृतिक बस्तों में बाँधकर रख देने की चीज़ देने की चीज़ बन जाती है।'' (माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली द्वितीय खण्ड पृष्ठ 326-327)

गाँधी जी बराबर यह चाहते रहे कि साहित्य मानव के मन को क्षुद्रताओं से बचाएगा और उन्नता की दिशा में अग्रेसर करेगा। मानव चिन्तन का मूल धन ऊर्ध्वमुखी शक्तियों का जागरण कर विश्व साहित्य में अपनी ओर से नई बात को प्रस्तुत करना ही तो है। अणु युग और आगे आने वाले युगों के विश्व के लिए एक नया गीत लिखने का काम साहित्य करेगा। गाँधी जी साहित्य विषयक चिन्तन को दरअसल विश्व साहित्य चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में देखना ज़रूरी है। उसे उनके अन्तःकोष में मणि-माणक्य के साथ जोड़ना होगा। सिद्धान्त रूप में यह वैष्णव चिन्तन है, विचार रूप में पूरब और पश्चिम की सहयात्रा है, अभिव्यक्ति के रूप में सर्वसामान्य जनों के साथ चलने वाला और सबको साथ लेकर चलने वाला सहित भाव है।

स्वयं गाँधी जी भी साहित्य के सम्बन्ध में एक विचार करते हुए दिखाई देते हैं। वह विचार देते हैं। वह विचार क्या है? उसका रूप क्या है? इसका विवेचन करना यहाँ आवश्यक है। विश्व के क्षितिजों को छू सकने वाले साहित्य का रूप क्या होगा, इसके बारे में उनके अपने कुछ निकष अवश्यमेव थे। उनकी राय का सारांश था कि वह साहित्य विश्व साहित्य का दर्जा पा सकता है, जिसके लिए किसी भी प्रकार की कोई बाड न हो। न कोई बन्धन हो न कोई घेरा हो। न कोई मर्यादा हो। जो साहित्य जाति-पाँति, सम्प्रदाय, धर्म लिंग; स्वार्थ या राष्ट्र के भेदाभेद को मिटा सकता है वह विश्व साहित्य बनने की योग्यता पाने वाला साहित्य हो सकता है, जो साहित्य तमाम कटघरों से मुक्त है। जो साहित्य तमाम बन्धनों की इयत्ताओं को पार कर सकता है। जो साहित्य मुक्त आकाश एवं खुली धरती के समान सबके स्वागत के लिए तत्पर है। तैयार है। खुला है। वह साहित्य विश्व साहित्य की योग्यता पा सकता है।

साहित्य इस अर्थ में उनकी नजरों में साथ-साथ चलने का व्यापार या व्यवहार है। 'सहितस्य भावः साहित्यं' यह साथ-साथ चलने का भाव, द्वन्द्वों से विनिर्मुक्त हो कर ही साधा जा सकता है यह उनकी विनम्र मान्यता रही। वे विश्व का अर्थ किसी भूप्रदेश तक इसीलिए सीमित नहीं मानते थे। सभी प्रकार के बन्धनों से जो मुक्त है वह विश्व साहित्य बनने की योग्यता पा सकता है। विश्व साहित्य के लिए अपरिहार्यतः उस साहित्यिक का जीवन एवं जीवन दशा भी उस दर्जे की होने की माँग करती है।

हमारी भारतीय परम्परा में वाल्मिकि, व्यास, कालिदास, कबीरदास, ज्ञानेश्वर, चैतन्य महाप्रभु। गोस्वामी तुलसीदास आदि महापुरुष इस प्रकार के व्यक्तित्व के धनी थे। उनका साहित्य इस विश्व साहित्य के आँगन में प्रस्थापित होने योग्य है। इस सन्दर्भ में एक मर्मवेधी प्रश्न की ओर गाँधी जी ने सबका ध्यान आकृष्ट किया है कि क्या साहित्य एवं उसका लेखक इनका कोई परस्पर सम्बन्ध का होना आवश्यक है? दूसरे शब्दों में क्या साहित्य एवं साहित्यकार का पारस्पारिक कोई रिश्ता-नाता होना ज़रूरी है? क्या साहित्यिक की तुलना में उसका साहित्य श्रेष्ठ हो सकता है? यह वाद का विषय हो सकता है। साहित्य और साहित्यिक का परस्पर भावसम्बन्ध होना आवश्यक है क्या? आदि प्रश्न इस सन्दर्भ में उपस्थित करने की संभावना जागती है।

जब तक साहित्यिक के व्यक्तित्व को वैश्विक योग्यता नहीं मिल सकती तब तक क्या उसके साहित्य को वह मान्यता मिल सकती है? साहित्यिक को चाहिए कि वह अपने व्यक्तित्व को इतना समुन्नत बनाए कि विश्व उसमें आ समाए। यह करते हुए उसके व्यक्तित्व को किसी प्रकार की हीनता का बोध नहीं छू सकता। उसकी अस्मिता पर कोई चोट नहीं पड़ सकती। उसके आत्मगौरव को कोई क्षति नहीं पहुँच नहीं सकती। अपनी मर्यादा की रक्षा करते हुए भी अपने आकलन को वैश्विक मान्यता दिलाई जा सकती है यह अभिनव विचार गाँधी जी के साहित्य के निकषों को समझने की दृष्टि में विशिष्ट है। बाधाओं और अवरोधों को तोड़-काटकर वह अधिक व्यापक एवं अधिक सर्वग्राही हो सकता है। यह साहित्य की साधना और आराधना का मर्म गाँधी जी ने प्रस्तुत किया है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह बाडों में अपने आपको सुरक्षित एवं धन्य समझता है। बाडे एवं घेरे उसे उपयुक्त एवं सुन्दर लगने लगते हैं। यह तथ्य उसकी समझ में ही नहीं आता है कि बाडों से घिरा हुआ मनुष्य अपने आप से घिर जाता है। अपने आपको संकुचित बना डालता है। बाडों को तोड़ गिराने का कार्य किसी को क्रांतिकारी लग सकता है तो यह क्रांतिकारी क़दम जो हमें अपने आपसे शुरू करना होगा। आगे चल कर इसकी परिधि बढ़ते रहती है। मनुष्य जाने अनजाने ही अपने इर्दगिर्द बाड़ें रचते हुए चले जाता है। इनका स्वरूप अहंकार और दूसरो के प्रति ईर्ष्या और द्वेष भरा होता है। प्रतियोगिता भरा होता है। इसका रूप तमगे या पुरस्कार, पदाधिकार या प्रतिष्ठा, समिति या सहुलियतें इस प्रकार का होता है। साहित्यिक को चाहिए कि वह इन प्रलोभनों से बचे अन्यथा वह कूपमण्डूक की तरह होगा। गाँधी जी का साहित्य विषयक चिन्तन हमें इस बात के प्रति आगाह करता है। कि सत्य और प्रेम के अलावा दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। गाँधी जी की भाषा में इस सत्य और अंहिसा की राह कहा जा सकता है। अपने आपको शून्य बनाए बगैर प्रेम की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से करना संभव ही नहीं होता है। गाँधी जी ने साहित्य के क्षेत्र को प्रेमक्षेत्र के रूप में घोषित किया है। आचार्य विनोबा जी ने इसे इसी नाम से पहचाना। हम अपने क्षेत्र को विस्तारित करते चले तो राह पाई जा सकता है।

गाँधी जी की राय है कि साहित्य को किसी विशेषण में बाँधना और उसे उस विशिष्ट विधा या प्रवाह का साहित्य मानना साहित्य की मूल और मुख्य धारा को संकुचित करना है। वह नागर या अनागर इस प्रकार का नहीं है। वह आदिवासी या गैर-आदिवासी प्रकार का नहीं है। वह दलित और दलितेतर प्रकार कभी नहीं है। इन विशेषणों से साहित्य सीमित होता जाएगा। मर्यादित हो जाएगा। साहित्य तो सीमाओं को लाँघने की सिखावन होता है। साहित्य तो सबको मुक्त रूप में स्वीकारने का आग्रह धरता है। साहित्य सबका उन्मुक्तरूप में स्वीकार ही तो है। जिस साहित्य को समृद्ध और सम्पन्न होना है, उसे अपना क्षेत्र विस्तार करना होगा। विश्वस्तर पर पहुँचने का यह मार्ग है।

गाँधी जी का चिन्तन है कि साहित्य परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिए। साहित्य किसी तत्व या वस्तु की शरमिन्दगी को अनुभव न करें। साहित्य की अपनी चेतना है। साहित्य का अपना आँगन है। साहित्य का अपना आकाश हे। साहित्य की अभिव्यक्ति की आड़ में आने वाले हर प्रकार के प्रलोभन को ठुकराने का बोध और भाव साहित्य की और साहित्यकार की शक्ति है। वह किसी के सामने न झुकेगा न हारेगा, न बिकेगा न गिरवी रखा जाएगा। साहित्य किसी कीमत पर अपना वजूद नहीं खोएगा। वह नियमों का पालन करेगा। अपने ईमान को कायम बनाए रहेगा। व्यवस्था और प्रशासन की हर भूल-गलती को ऊँची आवाज़ में कहेगा। गलत कदम का जमकर विरोध करेगा। किसी गलती की ओर आनाकानी करना या दुर्लभ करना उससे नहीं सधेगा। वह अचूक भाषा में अपनी बात करने में कभी नहीं चुकेगा। वह ऐन मौके पर मौन का पालन नहीं करेगा। यह विषय हमारी इयत्ता के बाहर का है ऐसा कहकर चुप्पी नहीं साध लेगा। इससे व्यक्ति और साहित्य दोनों ही अपनी अस्मिता को खो देंगे। अपने सम्मान से वंचित हो जाएँगे। नैतिक दृष्टि से अधःपतीत हो जाएँगे। दूसरों को हीन बनाएँगे। दूसरे के सम्बन्ध में तुच्छता का विचार करने वाला कोई व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में अपनी शान नहीं बचा सकता। नैतिक दृष्टि से सम्मानित नहीं हो सकता। दूसरों को हीन बनाने वाला व्यक्ति अपने जीवन और जीवनादर्शों की स्थापना कदापि नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति हमेशा अधोगामी होता है। साहित्य हो या कला, संस्कृति हो या नाट्य इन विषयों से सम्बन्ध हर प्रकार का चुनाव स्वतन्त्र रूप से किया जाना चाहिए यह गाँधी दृष्टि का हार्द्र था।

गाँधी जी सोचते हैं और सही सोचते हैं कि क्या हमारे शिष्ट साहित्य का प्रचार-प्रसार उस हद तक हो गया है जिस हद तक होना चाहिए? अगर नहीं हुआ है तो उसकी वजह क्या है? क्या हमारा साहित्य अपने शहरों की सीमाओं को लाँघकर गाँव-गाँव तक पहुँच पाया है? क्या वह खेत की मेंड़ों पर पहुँच पाया है? हमारे साहित्य का क्षेत्र और उसका विषय हमारे शहरों तक मर्यादित है। मध्यवित्तीय जनों तक मर्यादित है। आज क्या हम आदिवासी, दलित, मुस्लिम समाज का यथातथ्य चित्रण

कर पाए हैं? महिलाओं के तमाम प्रश्नों का हमारी प्रतिभा ने स्पर्श कर लिया है? जो अपने आपको साहित्यिक मानना है उसकी जिम्मेदारी है कि वह उन तमाम वर्गों का प्रतिनिधित्व करे, जो समाज के अंगोपांग हैं। उनसे हृदय से संवाद करने की कितनी तत्परता उनसे दिखाई है? यह गाँधी जी की नजरों में अहम प्रश्न है। लेखक की लेखनी के माध्यम से जन-जन का हर्ष-शोक, वेदना-आनन्द, आशा-आकाँक्षा, मनोकामना-मनोरथ प्रकट होने चाहिए। क्या हमारा आज का साहित्य और साहित्यिक सफल हुआ है? यह गाँधी जी के जमाने का प्रश्न आज भी उतना ही मुखर और प्रत्ययकारी है। आज भी क्या हम इस दिशा में अग्रेसर हो पाए हैं? गाँधी जी के साहित्य के सम्बन्ध में चिन्तन की यह दिशा इस प्रकार से हमें झकझोरकर रख देने वाली है।

गाँधी जी के विचारों में साहित्य की क्षितिज विस्तृत होना चाहिए। उसे विश्व साहित्य तक पहुँचाना वे जरूरी मानते रहे। इसके लिए उन्होंने कठोर आत्मपरीक्षण का मार्ग सुझाया। उदात्तता का आग्रह धरा। स्वच्छ जीवन दर्शन की बात कहीं। उदारमनस होने के रहस्य को समझाया। भाषा को प्रभावित करने वाले तीन तत्वों की बात उन्होंने बराबर की है। भाषा की प्रभविष्णुता बनाए रखने के लिए व्यक्ति का ज्ञान, अनुभव एवं संस्कार की बात महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान तो व्यक्ति गुरु से पाता है। अनुभव अपने पिता से लेकिन संस्कारों का आदान-प्रदान तो माता करती है। इसके माध्यम से हम दूसरों के सुख-दुःखों के प्रति संवेदनशील बनेंगे यह उनका निकष है। साहित्यिक को चाहिए कि वह प्रजा के सुख-दुःखों के साथ संवाद स्थापित करें। गम्भीर प्रश्नों के सम्बन्ध में अपनी जिम्मेदारी के भाव को समझें। अपनी जिम्मेदारी का दर्जा बढ़ाए। गाँधी जी की शैली में कहा जा सकता है जो साहित्यिक प्रजा के पाप-पुण्यों को अपने पाप-पुण्यों का दर्जा दे सकता है वह और प्रजा का साहित्यिक कहलाया जा सकता है। किसी सरोवर का जल चाहे जहाँ से लिया जाएँ, लेकिन उस सरोवर के जलस्तर में कभी आती है। उसी प्रकार से समाज के किसी भी प्रकार के पातक की जिम्मेदारी पूरे समाज की होती है। कुछ न कुछ अंशों में ही क्यों न हो लेकिन होती अवश्य है। सामाजिक पातक के प्रति साहित्यिक अपनी जिम्मेदारी समझ कर अपना प्रतिभाव व्यक्ति करें। इसके लिए आत्मशक्ति के जागरण की दिशा में प्रयत्न करने होंगे।

गाँधी जी के विचारों में राजसत्ता की तुलना में साहित्य अधिक शाश्वत् है। राजा भोज की तुलना में कालिदास सबको स्मरण है। सम्राट अकबर की तुलना में गोस्वामी तुलसीदास हम सबको प्रकाश देते हैं। राजा और महाराजाओं की तुलना में इस धरती पर जिनकी अधिसत्ता है ऐसे लोगों में साहित्यिकों के नाम लिए जाते हैं। गाँधी जी की राय है कि साहित्यिक को समाज के जलते-सुलगते प्रश्नों की ओर ध्यान देना चाहिए। साहित्य कर्मशील साधकों को बल प्रदान करता है। साहित्यकार की ललित मधुरता ओर कर्मयोगी की तेजस्विता इनका सुमधुर मिलन जीवन को एक नई राह देता है। दोनों के पारस्परिक सहयोग के कारण साहित्य और कर्मयोगी दोनों का

मार्ग विकसित होगा। दोनों के सहयोग के बिना साहित्य निस्तेज और कर्मयोगी संस्कारिता में काम मालूम होगे।

समाज की वेदना साहित्य में जब स्थान पाती है, तब साहित्य और समाज दोनों एक-दूसरे के लिए बलदायी सिद्ध होते हैं। साहित्य प्रशासन एवं शासन की तुलना में अधिक लोगों तक पहुँच सकता है। यह प्रक्रिया जब जारी रहेगी तब साहित्य की प्रभविष्णुता सामने आएगी। यह कार्य सत्य की आराधना से सम्पन्न हो सकेगा। गाँधी जी इस प्रकार से साहित्य की शाश्वत् मूल्यवत्ता का विचार सामने रख कर चलते हैं। साहित्य की गुणों की चर्चा का यह अध्याय काफी दीर्घ हो सकता है, लेकिन उसका मूलाधार सत्य की साधना ही है।

गाँधी जी का चिन्तन मानता है कि सत्यनिष्ठ साहित्यिक सत्याधिष्ठित साहित्य की रचना कर सकते हैं। साहित्य की मूल धारणा इस प्रकार से सत्य की पूजा है। साहित्य की मूल्यनिष्ठा के आधार यों सत्यनिष्ठा प्रामाणिकता नेकीं पर अवलंबित है। साहित्य का विचार अपने आपके बारे में प्रामाणिक और समाज के सम्बन्ध में सूक्ष्म भावग्राही होना चाहिए। साहित्य विविधता का विचार तो करता ही है, लेकिन उसमें स्थित एकता को परखता है। इसलिए कोई कठिन उग्र तपाचरण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए हमारी समझ को विकसित करना आवश्यक होता है। भारतीय साहित्य में प्रतिपादित विविधता का आधार इस तरह विविध शैली, रूप आकार एवं अभिव्यक्ति आदि तमाम क्षेत्रों को स्पर्श कर चलता है। विविधता के अध्ययन का आधार उसमें स्थित एकता की साधना का विचार है। एकता की परख करना है। मराठी के संत नामदेव सात सौ सालों पूर्व ठेठ पंजाब तक अपनी कविता की पताका फहराते हुए दिखाई देते हैं। दो-ढाई शतकों पूर्व के गुजराती भाषा के कवि गुजराती में पद लिखने के साथ हिंदी में अपनी एक रचना अवश्य लिखते यह अपने ढंग की गुजराती और अपने ढंग की हिंदी का सुन्दर रूप होता। इस विविधता में एकात्मता के दर्शन होते। इन साहित्यिकों ने आखिरी आदमी से संवाद स्थापित किया है। साहित्य का एक पक्ष अपनी-अपनी भाषाओं का परस्पर आदान-प्रदान भी है। गाँधी जी हमेशा कहा करते थे कि जो समाज में स्थित भलाई को जगाता है, उसे कवि माना जाए।

कृष्ण कृपलानी ने गाँधी जी के प्रतिभा रूप की मीमांसा करते हुए कहा है : ''अगर प्रतिभा शब्द का प्रयोग करना ही हो तो हम कहेंगे कि गाँधी जी की प्रतिभा इसमें थी कि वे निरन्तर भयभीत हुए बिना और बिना थके कष्ट उठा कर कर भी एक कभी न थमने वाली नैतिक प्रेरणा का पालन करते रहते थे। युवास्था की दहलीज लाँघने के बाद उनका पूरा जीवन एक क्षण विश्राम किए बिना भी सत्य की खोज का एक लम्बा अभियान था—ऐसे सत्य का जो 'अनादि और अनन्त' था, जो अमूर्त या तत्व मीमांसी सत्य नहीं बल्कि ऐसा सत्य था जिसे मानव-सम्बन्धों में ही साकार किया

जा सकता था, वे एक-एक कदम आगे बढ़े और कोई कदम दूसरे मनुष्यों के कदमों से बड़ा नहीं था और फिर हमने उन्हें ऐसी ऊँचाई पर देखा, जहाँ वे महामानव दिखाई देते थे...अगर गाँधी जी आखिर में किसी दूसरे इन्सान से भिन्न दिखाई देते थे, तो हम यह भी याद रखें कि आरम्भ में वे भी किसी भी दूसरे इन्सान जैसे ही थे।'' (गाँधी : एक जीवनी कृष्ण कृपलानी मूल अंग्रेजी का ग्रन्थ हिंदी अनुवादक नरेश 'नदीम' नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली पहला संस्करण 1983 पृष्ठ संख्या 199 मूल्य 55 प्रस्तुत सन्दर्भ का पृष्ठ क्रमांक 14)

गाँधी जी ने जो साहित्य लिखा उसके स्वरूप को समझ लेना भी ज़रूरी है। पारम्पारिक अर्थ एवं अभिव्यक्ति का विचार करते हुए वे लेखक नहीं हैं वे लेखन का काम करने वाले नहीं है हाँ, वे काम का लेखन करने वालों में से एक हैं। उन्होंने जो लिखा वह आन्तरिक उद्वेलन के रूप में प्रकट हुआ है। वह काम की अनिवार्यता के रूप में प्रकट हुआ है। वह उनकी आवश्यकता को ध्यान में लेकर प्रकट हुआ है। वह संवाद साधने की विकल आवश्यकता के रूप में प्रकट हुआ है। वह न कहे जाने की वेदना के माध्यम से प्रकट हुआ है। उनका लेखन एक सृजन की आवश्यकता नहीं उनके कथन की अनिवार्यता का प्रतिफल है। उन्होंने जो कहा और जो लिखा वह कहे बिना या लिखे बिना वे रह ही नहीं सकते थे, इसलिए कहा–लिखा गया है। यह ध्यान में लेने पर इसका मर्म हमारी समझ में आ सकता है। किसी लेखक के ठाठ एवं नाज नखरे के साथ उनके लेखन की कोई तुलना ही नहीं की जा सकती है। वे निरन्तर एक आत्मशोध के निमित्त लिखते रहे हैं। वे अपनी बात करने का कोई माध्यम चुनने की कोशिश में लिखते रहे हैं बोलते रहे हैं। यह लिखना या बोलना उनके लिए एक आवश्यकता है। एक अनिवार्यता है। एक अपरिहार्यता है।

गाँधी जी ने जीवन और अभिव्यक्ति के लगभग सभी क्षेत्रों में अपने स्वतन्त्र चिन्तन एवं विचारों की छाप छोड़ी है। दक्षिण अफ्रीका में और उसके पूर्व विलायत के अध्ययन काल में उन्होंने व्यापक पठन किया। कारावास-काल का समय तो उन्होंने विश्वविद्यालयीन छात्र की तरह ही बिताया। अनके भाषाओं को सीखने की कोशिश की। अनेक सुहृदों से संवाद साधा अनेक ग्रन्थों का संकल्प किया। अनेक ग्रन्थों का लेखन किया। बहुत व्यापक मात्रा में पत्र लेखन किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र स्थान निर्माण किया। गाँधी जी ने दुनियाभर के उत्तमोत्तर ग्रन्थों का अनुवाद कार्य सम्पन्न किया। अनेक स्वनामधन्य साहित्य धर्मियों से संवाद साधा। साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से अपने विचारों का प्रतिपादन किया। रवींद्रनाथ टैगोर कवि थे तो गाँधी जी अपने आपमें एक कविता थे। वे स्वयं अपने आपको 'कला कोविंद' कहलवाते थे। दुनिया गाँधी जी की अंग्रेजी भाषा और लेखनशैली पर मुग्ध थी। अनेक विद्वानों ने उनकी अंग्रेज़ी भाषा को बाइबिल के समतुल्य माना है।

गाँधी जी की सर्वव्यापक एवं सर्वस्पर्शी भूमिका का ही यह परिणाम रहा कि उन्होंने दक्षिण की भाषाओं को खुद सीखा उन पर अधिकार पाया। दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए 'दक्षिण भारतीय हिन्दी प्रचार समिति' की स्थापना की। इस देश को जोड़ने वाली भाषा के रूप में हिन्दी का गौरव बढ़ाने वाले गाँधी जी की अपनी मातृभाषा गुजराती रही। 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है' यह उनका वाक्य उनके भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट अभिव्यक्ति देता है। अपने समय में गाँधी जी के द्वारा विदेशी अफसरों से किए हुए पत्र व्यवहार की भाषा एवं शैली उनके साहित्य चिन्तन का एक अनोखा नमूना पेश करती है। यह उनके लेखन का एक सहज-सरल साहित्यिक रूप है। वे अध्यापक के समान समझाऊ-बुझाऊ शैली में अपनी बात करते हुए दिखाई देते हैं। धर्म नीति और अध्यात्म के समान शब्दों को उन्होंने लगभग वैकल्पिक रूप में स्वीकारा और प्रयुक्त भी किया। उनकी साहित्य विषयक मान्यता को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'सामाजिक मंगलेच्छा' कह कर पुकारा जा सकता है। गाँधी जी ने भारतीय साहित्य को विविध कोणों से समृद्ध किया। उनके आन्दोलन की सरिताओं के तट पर साहित्य के भव्य और नव्य तीर्थ स्थापित हुए।

एक लेखक के रूप में गाँधी जी जो पढ़ते थे उस पर कितना अमल करते थे उसका एकमात्र उदाहरण यहाँ देना उपयुक्त होगा। गाँधी जी ले एक यात्रा में रस्किन के 'अन टू दिस लास्ट' नामक ग्रन्थ को पढ़ा और उससे प्रभाव ग्रहण किया। उनके मन में पहले से विद्यमान चिन्तन को इस पठन से दिशा मिली। इसका तफसिलवार ब्यौरा देते हुए वे लिखते हैं : मैं 'सर्वोदय' के सिद्धान्तों को इस प्रकार समझा हूँ :

1. सब की भलाई में हमारी भलाई निहित है।
2. वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
3. सादा मेहनत-मज़दूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली चीज मैं जानता था दूसरी को मैं धुँधले रूप में देखता था। तीसरी का मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। 'सर्वोदय' ने मुझे दीये की तरह दिखा दिया कि पहली चीज में दूसरी दोनों चीजें समायी हुई हैं। सवेरा हुआ और मैं इन सिद्धान्तों पर अमल करने के प्रयत्न में लगा।'' (सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा संस्करण सितम्बर 2010 नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद मूल्य 30 रुपए पृष्ठ 454 सन्दर्भ पृष्ठ 271)

गाँधी जी के आरम्भिक लेखन की चर्चा करते हुए उनके 'हरे परचे' का विचार किया जाना जरूरी है। पुण्यात्मा और पापी, दोनों को अच्छी तरह कोई काम करने पर सुख का एक समान अनुभव होता है। सार्वजनिक जीवन और पेशे, दोनों में गाँधी जी अधिकाधिक अपना स्थान बनाते जा रहे थे। उनका काम नेटाल के भारतीय समुदाय के लिए भारी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा था जो हर कठिनाई में मार्गदर्शन और सहायता

के लिए उनकी ओर देखता रहता था। इतना ही नहीं, वे भी खुद की आत्मा को विशालकाय होते देख रहे थे। इसलिए उनको यह विश्वास होते देर नहीं लगी कि भविष्य उनके लिए चाहे जो कुछ लेकर आए, आने वाले कुछ वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका ही उनकी कर्म भूमि होगा।

कुछ भी हो, वे अब उस लक्ष्य को नहीं छोड़ सकते थे जिसे उन्होंने खुद बड़े जोश-खरोश से उठाया था ओर वे सभी व्यावहारिक दृष्टियों से जिसके एकमात्र नहीं तो प्रमुख प्रवक्ता और नेतृत्व कर्मी अवश्य थे। वे अपने योगदान के प्रति सजग थे और फिर भी विनम्रता से इसका आकलन करते थे। उन्हें इसका गर्व था कि वे एक शुभ ध्येय के लिए कार्य कर रहे थे विनम्रता के साथ समझते थे कि वे उस ध्येय के एक अपर्याप्त साधन हैं। यहीं उनके पूरे जीवन का खास दृष्टिकोण बना रहा।

यह दृष्टिकोण उस पहले पत्र में ही स्पष्ट था, जो उन्होंने 5 जुलाई 1894 को दादा भाई नौरोजी के नाम लिखा था, जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार और जनता के सामने भारतीयों का पक्ष प्रस्तुत करने में उनकी सहायता माँगी थी। इसमें उन्होंने मताधिकार विधेयक के वास्तविक उद्देश्य को स्पष्ट किया था और अपनी सुबोध और अर्थपूर्ण शैली में नेटाल के यूरोपीय समुदाय के दृष्टिकोण को इस प्रकार प्रस्तुत किया था : 'हम यहाँ अब और हिन्दुस्तानी देखना नहीं चाहते। हम कुली चाहते हैं, मगर वे यहाँ गुलाम रहेंगे और जैसे ही आजाद होंगे, भारत चले जाएँगे।' फिर उन्होंने अपने देशवासियों के प्रवक्ता के रूप में अपनी भूमिका को स्पष्ट किया है : 'दो शब्द मेरे और जो कुछ मैंने किया है उसके बारे में मैं अभी भी अनुभवहीन और छोटा हूँ और इसलिए बहुत संभव है कि मैं गलतियाँ कर बैठूँ यह जिम्मेदारी मेरी योग्यता से कहीं बहुत अधिक है। मैं यह भी लिख दूँ कि मैं यह सब बिना किसी पारिश्रमिक के कर रहा हूँ। इसलिए आप पाएँगे कि मैंने विषय को जो मेरी योग्यता से बाहर है, इसलिए नहीं उठाया है कि मैं भारतीयों की कीमत पर खुद धन बटोरना चाहता हूँ। मैं यहीं एकमात्र उपलब्ध व्यक्ति हूँ, जो इस सवाल को निबटा सकता है। इसलिए अगर आप मुझे कृपा करके रास्ता दिखाए और आवश्यक सुझाव दें, तो यह मेरे ऊपर आपका बहुत बड़ा एहसान होगा। मैं उनको बच्चे के लिए पिता के सुझाव समझकर स्वीकार करूँगा।'

अब तक तीन बरस हो चुके थे। अगर गाँधी जी को अनिश्चित काल तक दक्षिण अफ्रीका में रहना था तो जरूरी था कि वे भारत से अपना परिवार ले आए। इसलिए उन्होंने देश जाने के लिए अपने साथियों और सहकर्मियों से छः माह का अवकाश माँगा। उन्होंने प्रार्थना की कि वे भारत में बिताए गए समय का उपयोग करके जनता को दक्षिण अफ्रीका में रह रहे उनके देशवासियों के दुःखों से परिचित कराएँगे जून 1896 में वे डरबन से जहाज में चले।

अपने देशवासियों की प्रार्थना पूरी करने के लिए उन्होंने यात्रा के दौरान एक तथ्यात्मक लिखा जिसका नाम उन्होंने 'दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश भारतीयों की शिकायतें' रखा। इसे उन्होंने देश पहुँच कर प्रकाशित कराया। परचे के आवरण के रंग के कारण इसी का नाम 'हरा परचा' पड़ा। इसकी दस हजार प्रतियाँ छापी गईं। भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने इसका व्यापक प्रचार किया और इस पर टिप्पणियाँ की। पहला संस्करण जल्द ही बिक गया और दूसरा छापना पड़ा।

गाँधी जी का वर्णन गम्भीर और संयम पूर्ण था। यह हमेशा की तरह असत्य, घृणा या किसी प्रकार की अतिशयोक्ति से पाक-साफ था। उन्होंने ऐसी बात नहीं कही थी उन्होंने डरबन में बहुत पहले प्रकाशित 'खुली चिट्ठी' में नहीं कहीं थी। वास्तव में, उनके पूरे जीवन में उनकी राजनीतिक आस्था का जो बुनियादी तत्त्व रहा है, यहाँ इस बयान में स्पष्ट था : 'दक्षिण अफ्रीका में हमारा तरीका प्रेम से इस घृणा पर विजय पाने का है।' दुर्भाग्य से, रायटर ने इसकी एक भ्रष्ट और विकृत रिपोर्ट भेजी जिसने नेटाल के यूरोपीय में काफ़ी गलतफहमी पैदा की उन्हें विश्वास हो चला कि उनकी अनुचित निन्दा और मानहानि की गई है। आगे चलकर इसके दुःखद परिणाम हुए।

गाँधी जी ने के कुछ समय अपने गृह नगर राजकोट में बिताया। यहाँ उनका दुर्दमनीय उत्साह हरे परचे की छपाई और उसे दूसरों को भेजने के अलावा अनेक गतिविधियों के रूप में सामने आया।

गाँधी जी अभी कलकत्ता में थे। वहाँ एक जन सभा को उनके द्वारा सम्बोधित किए जाने की उम्मीद थी, तभी उन्हें डरबन से एक तार मिला कि वहाँ उनकी मौजूदगी फौरन जरूरी थी। इसलिए वे शीघ्रता से मुम्बई पहुँचे वहाँ से अपनी-अपनी पत्नी और बच्चों के साथ दिसम्बर के शुरू में वे कूरलैण्डर जहाज पर चल पड़े। लगभग उसी समय एक और जहाज रवाना हुआ जो नेटाल और ट्रांसवाल के लिए के लिए भारतीय यात्री ले जा रहा था। दोनों जहाज दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में डरबन पहुँचे। उनको फौरन जब्त कर लिया गया।

हरे परचे के बारे में रायटर ने अपनी विकृत रिपोर्ट भेजी थी। इस कारण डरबन के गोरे निवासियों को वह लेखन गाँधी जी का सोच-समझ कर किया गया निन्दा-अभियान लगा था। इस कारण वे गुस्से से उबल रहे थे इसके बाद एक और निराधार आशंका जागी थी, उसने आग में घी का काम किया था कि गाँधी जी अपने साथ दो जहाजों में भर कर भारतीय अप्रवासियों को लाए थे। फिर तो भयानक सभाएँ हुई जिनमें गोरे वक्ताओं ने धमकी दी कि अगर ये यात्री वापस नहीं जाते, तो उन सबको वे समुद्र में फेंक देंगे। एक लालच भी दिया गया कि अगर वे भारत लौट जाएँगे तो उनको वापसी का भाड़ा भी दिया जा सकता है अर्थात् भारतीय यात्रियों पर किसी धमकी या किसी फुसलावे का कोई असर नहीं पड़ा। न ही दादा अबदुल्ला एण्ड कम्पनी पर कोई असर पड़ा। मजबूरी की वजह से जहाज पर ही क्रिसमस मनाना पड़ा। जहाज के

कप्तान ने एक भोज दिया। उसके बाद गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता विषय पर एक भाषण दिया। तेईस दिनों के बाद जहाजों को बन्दरगाह में घुसने की इजाजत मिली और सारे मुसाफिर बिना किसी नुकसान के उतर गए। जैसे ही गाँधी जी नीचे उतरे, पहचान लिए गए देखते-ही-देखते एक भीड़ चीखते-चिल्लाते और गालियाँ बकते हुए उनके चारों तरफ जमा हो गई। गाँधी जी पर पत्थरों, ईंटों के टुकड़ों और अण्डों की बारिश होने लगी। खतरा टला नहीं था। खून का स्वाद चख चुकी पागल भीड़ और खून माँग रही थी। अपने शिकार को खोकर चिंघाड़ती हुई भीड़ ने रुस्तम जी के महान को घेर लिया और चिल्लाने लगी : 'गाँधी को हमारे हवाले करो।' पुलिस अधिक्षक को विश्वास नहीं था कि वह उस वहशी भीड़ को देर तक काबू में रख पाएगा। इसलिए उसने घबराकर गाँधी जी को सन्देश भेजा कि अगर रुस्तम जी के मकान और उसके निवासियों के जीवन को बचाना है, तो वे भेस बदलकर वह छोड़ने पर राजी हों। इसलिए गाँधी जी चुपके से एक भारतीय कांस्टेबिल के रूप में घर से बाहर निकल गए। उनके साथ दो गुप्तचर भी थे और वे भी भेस बदले हुए थे।

इसी स्थान पर गाँधी जी के राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में विचारों को जान लेना समीचीन होगा। उन्होंने बार-बार अलग-अलग प्रसंगों में बराबर इस प्रश्न के बारे में अपने चिन्तन को स्पष्टता दी है। उसका सार-संकलन स्वयं उन्हीं के शब्दों में बिना किसी टिप्पणी के अविकल रूप में देना ही उस विषय के साथ न्याय करना होगा इस विचार से इस संकलन को जैसा-का-तैसा ही यहाँ दिया जा रहा है।

राष्ट्रभाषा के बारे में गाँधी जी का चिन्तन था—हमारी भाषा हमारा ही प्रतिबिम्ब होती है, और यदि आप मुझसे यह कहते हैं कि हमारी भाषाएँ इतनी अशक्त हैं कि उनके द्वारा सर्वोत्तम विचार व्यक्त नहीं किए जा सकते तो मैं यह कहूँगा कि हमारा अस्तित्व जितनी जल्दी समाप्त होजाए उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो यह कल्पना करता हो तो अंग्रेजी कभी भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? राष्ट्र पर यह मुसीबत क्यों डाली। मुझे पूना के कुछ प्राध्यापकों के साथ घनिष्ठ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि हर एक भारतीय युवक, चूँकि वह अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा पाता है, अपने जीवन के कम से कम छः बहुमूल्य वर्ष व्यर्थ गँवा देता है। इस संख्या को हमारे स्कूलों तथा कॉलेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की संख्या से गुणा कीजिए और फिर स्वयं यह पता लगाइए कि राष्ट्र ने कितने हजार वर्ष गँवा दिए हैं। हमारे ऊपर आरोप यह लगाया जा रहा है कि हमारे अन्दर आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है। हमारे अन्दर यह शक्ति हो ही कैसे सकती है—जबकि हमें अपनी जीवन के बहुमूल्य वर्षों को एक विदेशी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में लगा देना पड़ता है? इस प्रयास में भी हम विफल हो जाते हैं।

वास्तव में, हम अंग्रेजी पर कभी अधिकार नहीं प्राप्त कर पाते, कुछ थोड़े-से लोगों को छोड़कर हम लोगों के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका है, हम अंग्रेजी में अपनी भावनाओं को उतनी अच्छी तरह कभी व्यक्त नहीं कर सकते, जितनी अच्छी तरह अपनी मातृभाषा में। हम अपने बचपन के सारे वर्षों की याद कैसे भूल सकते हैं? पर जब हम अपनी उच्चतर शिक्षा, जैसा कि हम उसे कहते हैं, एक विदेशी भाषा के माध्यम से शुरू करते हैं तब हम ठीक यहीं काम करते हैं। इससे हमारे जीवन का क्रम भंग हो जाता है जिसके लिए हमें बहुत भारी मूल्य चुकाना होगा।

मैंने लोगों को यह कहते सुना है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय ही नेतृत्व कर रहे हैं तथा देश के लिए सभी काम कर रहे हैं। यदि ऐसी बात न होती तो बहुत ही बुरा होता जो शिक्षा हमें मिलती है वह मात्र अंग्रेजी शिक्षा ही है। हमें उसका कुछ-न-कुछ फायदा तो अवश्य दिखाना चाहिए। लेकिन मान लीजिए कि हमें पिछले पचास वर्षों में अपनी भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा मिली होती तो आज स्थिति क्या होती। आज भारत स्वतन्त्र होता। हमारे शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशियों जैसे न होते वरन् उनकी वाणी देश के हृदय को छूती गरीब-से-गरीब लोगों के बीच वे काम करते और पिछले पचास वर्षों में वे जो कुछ हासिल करते वह राष्ट्र की एक विरासत होती। आज हमारी पत्नियाँ तक हमारे अच्छे-से-अच्छे विचारों में शरीक नहीं हो पाती। प्रोफेसर वसु और प्रोफेसर राय तथा उनके शानदार अनुसन्धानों पर दृष्टिपात कीजिए। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि आम जनता को उनके अनुसन्धानों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

हम समाज की सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान प्राप्ति को हम जो झूठा महत्व देना सीख गए हैं, उससे अपने को तथा समाज को मुक्त करें। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। यह देश की राष्ट्रभाषा होती जा रही है। हमारे सर्वोत्तम विचार इसी भाषा में व्यक्त किए जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता में विश्वास के कारण हम दास बन गए हैं। इसने हमें सच्ची राष्ट्रसेवा के अयोग्य बना दिया है। हम आम जनता से अलग हो उनसे आम जनता को कोई फायदा नहीं हुआ हैं। पिछले 60 वर्षों से ज्ञान संचय करने के बजाय हम नए-नए शब्दों तथा उनके उच्चारण रटने में लगे रहे हैं। हमने अपने माता-पिता से प्राप्त ज्ञान की नींव पर निर्माण करने के बजाए उसे लगभग भुला दिया है। इतिहास में इस तरह का और कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह राष्ट्र का दुर्भाग्य है।

हम समाज की पहली तथा सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि हम अपनी देशी भाषाओं को पुनः अपनाएँ, हिन्दी को उसके राष्ट्रभाषा के स्वाभाविक पद पर फिर से प्रतिष्ठित करें और अपने समस्त प्रान्तीय कार्यों को अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं में तथा राष्ट्रीय कामों को हिन्दी में करना शुरू करें। जब तक हमारे स्कूल तथा कॉलेज हमें देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्ष नहीं देने लगते तब तक हमें चैन से नहीं बैठना

चाहिए। आज अंग्रेजी का अध्ययन उसके व्यापारिक एवम् तथाकथित राजनीतिक महत्त्व के कारण किया जाता है। हमारे लड़के यह सोचते हैं और वर्तमान परिस्थितियों में उनका यह सोचना सही भी है कि अंग्रेजी के बिना उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। लड़कियों को अच्छी शादी के लिए अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूँ जो अंग्रेजी इसलिए सीखना चाहती हैं, जिससे वे अंग्रेजों से अंग्रेजी में बातें कर सकें। मैं ऐसे पतियों को भी जानता हूँ, जो इस बात से दुःखी हैं कि उनकी पत्नियाँ उनसे तथा उनके मित्रों से अंग्रेजी में बातचीत नहीं कर सकती। ऐसे परिवारों को भी जानता हूँ, जिनमें अंग्रेजी को मातृभाषा का रूप दिया जा रहा है...देशी भाषाओं को कुचला जाना तथा उन्हें निर्बल बनाना जैसे कि उनके साथ हुआ है—मेरे लिए असह्य है। मैं इस बात को सहन नहीं कर सकता कि माँ-बाप अपने बच्चों को तथा पति अपनी पत्नियों को अपनी भाषाओं को छोड़कर अंग्रेजी में पत्र लिखें। यद्यपि मैंने पश्चिमी सभ्यता के प्रति अपने ऋण को खुले आम स्वीकार किया है तथापि मैं यह कह सकता हूँ कि राष्ट्र की जो कुछ भी सेवा मैं कर सका हूँ, उसका एकमात्र कारण यह है कि जिस हद तक मुझसे बन पड़ा मैंने पूर्वी सभ्यता को अपने अन्दर कायम रखा। यदि मैं अंग्रेजियत में रंगा होता, राष्ट्रीय भावना से रहित होता और आम जनता के तौर-तरीकों, आदतों, विचारों तथा महत्वाकांक्षाओं से अनभिज्ञ होता, उनकी कम परवाह करता और कदाचित् उनसे नफरत भी करता, तो मैं आम जनता के लिए बिलकुल बेकार साबित होता।

जब कभी मैंने विद्यार्थियों की सभाओं में भाषण किया है, मुझे अंग्रेजी में बोलने की माँग पर आश्चर्य हुआ है। आपको मालूम है अथवा होना चाहिए कि मैं अंग्रेजी भाषा का प्रेमी हूँ, लेकिन मेरी धारणा है कि यदि भारत के विद्यार्थी, जिनसे यह आशा की जाती है कि देश के लाखों-करोड़ों लोगों के साथ मिल कर काम करेंगे और उनकी सेवा करेंगे, अंग्रेजी की बजाए हिन्दी की ओर अधिक ध्यान दें तो वे इस काम के लिए ज्यादा योग्य बनेंगे। मैं यह नहीं कहता कि आपको अंग्रेजी नहीं सीखनी चाहिए, आप अवश्य सीखिए लेकिन जहाँ तक मेरा विचार है वह करोड़ों भारतीय घरों की भाषा नहीं हो सकती। वह हजारों अथवा लाखों व्यक्तियों तक ही सीमित रहेगी, करोड़ों तक नहीं पहुँच सकती। अतः जब छात्र गण मुझसे हिन्दी में बोलने के लिए कहते हैं तब मुझे खुशी होती है।

अब हम राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करें। यदि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा होनी है, तो उसे हमारे स्कूलों में एक अनिवार्य विषय बना दिया जाना चाहिए। पहले हम इस बात पर विचार करें कि क्या अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा बन सकती है? हमारे कुछ विद्वान लोगों का, जो अच्छे देशभक्त भी हैं, कहना है कि इस प्रश्न को उठाना ही अज्ञान का द्योतक है। उनकी राय में वह तो राष्ट्रभाषा है ही।

सतही तौर पर विचार करने पर उक्त मत सही मालूम होता है। हमारे समाज के शिक्षित वर्ग को देखने से मालूम होता है कि अंग्रेजी के न रहने पर हमारा सारा काम ठप्प हो जाएगा। लेकिन गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि अंग्रेजी न तो हमारी राष्ट्रभाषा बन सकती है और न बननी चाहिए।

आइए देखें कि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनने के लिए क्या बातें जरूरी हैं।

1. सरकारी अधिकारियों के लिए उसका सीखना आसान होना चाहिए।
2. वह भारत भर में धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विचार-विनिमय का माध्यम बनने के योग्य होनी चाहिए।
3. वह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जानी चाहिए।
4. समूचे देश के लोगों के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए।
5. इस भाषा का चुनाव करते समय अस्थायी अथवा क्षणिक हितों का खयाल नहीं रखा जाना चाहिए।

अंग्रेजी इनमें से किसी भी शर्त को पूरा नहीं करती—तब वह कौन-सी भाषा है जो इन पाँचों शर्तों की पूर्ति करती है? हमें मानना पड़ेगा कि वह हिन्दी ही है।

मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तानी समस्त भारतीयों के लिए सबसे उपयुक्त अन्तर्प्रान्तीय भाषा होगी। आम जनता ने तो फारसी भरी उर्दू आसानी से समझ सकती है और न संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ब्रिटिश राज के समाप्त होने पर बोलचाल के सामान्य माध्यम अथवा अदालती भाषा के रूप में अंग्रेजी नहीं रह सकती। यह तो कोरी अनधिकार चेष्टा है। मैं अंग्रेजी भाषा का उसके अपने स्थान पर आदर करता हूँ। वह भारत की राष्ट्रभाषा कभी नहीं हो सकती।

प्रसिद्ध गायक दिलीपकुमार राय ने बातचीत करते हुए सन् 1934 में गाँधी जी से कहा था कि जीवन समस्त कलाओं में श्रेष्ठ है। वे तो समझते हैं कि जो अच्छी तरह जीना जानता है, वहीं सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला के मूल्य का आधार है जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है। कला शब्द का प्रयोग यहाँ व्यापक अर्थ में हुआ है। साहित्य उससे बाहर नहीं है, कदाचित् ऐसे ही साहित्य को दृष्टि में रखकर गाँधी जी ने कहा था वहीं काव्य और वहीं साहित्य चिरंजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे, जिसे आसानी से पचा सकेंगे।

गाँधी जी के साहित्य को उन्हीं की मान्यताओं की परिधि में परखा जाना चाहिए। जिस प्रकार के साहित्य की कल्पना उन्होंने की है, उस प्रकार के साहित्य का सृजन वहीं कर सकता है जिसने साहित्य के विषय से साक्षात्कार कर लिया हो अर्थात् जो उसे जीता हो गाँधी जी की भाषा में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि जो भली-भाँति जीना जानता है वहीं साहित्यकार है। निस्सन्देह गाँधी जी का विकास एक साहित्यिक के रूप में नहीं हुआ। उन्होंने कभी ऐसा दावा भी नहीं किया, परन्तु उन्होंने

अपनी आत्मकथा लिखी है। अनेक संस्मरण लिखे हैं। उन्हीं के आधार पर यदि उन्हें साहित्यकार माना जाए तो असंगत न होगा। वे अधिकतर गुजराती और अंग्रेजी में लिखते थे। इसलिए उन भाषाओं पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। गुजराती के विद्वान् उन्हें एक अनुपम गद्य शैलीकार मानते हैं। जिस समय गोलमेज परिषद् के अवसर पर उन्होंने लन्दन से अमरीका के लिए सन्देश प्रसारित किया था, उस समय विश्व उनकी सरल परन्तु अर्थगर्भित भाषा सुनकर विस्मित रह गया था। यद्यपि दूसरी भाषाओं में उन्होंने बहुत ही कम लिखा है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रभावित अवश्य किया है। उनकी शैली को अंग्रेजी का 'बिव्लिकल' शब्द ठीक-ठीक व्यक्त करता हैं उसकी सरलता संकेतप्रियता, संयत विनोदप्रियता, सुसूत्रता, संक्षिप्तता और सहज तार्किक गम्भीरता के कारण ही उसमें अपूर्व शक्ति समाई है। सबसे बढ़ कर उनकी आत्मीयता के कारण उसमें जो पारदर्शित आई है वह उनकी अपनी विशेषता है।

'फुलॉप मिलर' ने लिखा है, किसी जमाने में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानव-प्राणी की वेदना अपना अवगुण्ठन उठा कर खड़ी हो गई थी, उसी तरह अब वह गाँधी के सामने खड़ी हो गई है। इसलिए वे अपनी भावनाएँ और शक्तियाँ ऐसे किसी उद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढाँपने में और दुखियों को ढाढास बँधाने में पत्यक्ष रूप से सहयोग न दे। इसलिए वे कला, काव्य और साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर कसते थे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक बार उन्होंने एक पत्र में लिखा था : ''अपने काव्य के प्रति सच्चा रहकर यदि कवि आगामी कल के लिए जिन्दा रहता है और दूसरों को भी उस कल के लिए जीवित रहने को आदेश देता है, वह हमारे चकित चक्षुओं के सामने उन सुन्दर चिड़ियों के सुन्दर चित्र खींचता है जो उषा के आगमन पर महिमा के गीत गाती हुई शून्य में अपने रंगीन पंखों से उड़ान भरती हैं। ये चिड़ियाँ दिन-भर का अपना भोजन प्राप्त करती हैं और रात के आराम के बाद आकाश में उड़ती हैं। उनकी रंगों में पिछली रात नए रक्त का संचार हो चुका है पर मुझे ऐसे पक्षियों को देखने से वेदना भी हुई है, जो निर्बलता के कारण अपने पंख फड़फड़ाने का साहस भी नहीं कर सकते। भारत के विस्तृत आकाश के नीचे मानव-पक्षी रात को सोने का ढोंग करता है। भूखे पेट उसे नींद नहीं आती और जब वह सुबह बिस्तर से उठता है तो उसकी शक्ति पिछली रात से कम हो जाती है। लाखों मानव-पक्षियों को रात-भर भूख-प्यास से पीड़ित रह कर जागरण करना पड़ता है अथवा जाग्रत स्वप्नों में उलझे रहना पड़ता है। यह अपने अनुभव की, अपनी समझ की, अपनी आँखों देखी, अकथ दुःखपूर्ण अवस्था और कहानी है। कबीर के गीतों से इस पीड़ित मानवता को सान्त्वना दे सकना असंभव है। यह लक्षावधि भूखी मानवता हाथ फैलाकर, जीवन के पंख फड़फड़ाकर कराहकर केवल एक कविता माँगती है जिसका नाम है 'पौष्टिक भोजन'।''

अपने पुरुषार्थी विचारों के कारण सन् 1935 में गुजराती साहित्य सम्मेलन के बारहवें अधिवेशन के सभापति पद से स्त्रैण साहित्य की निन्दा करते हुए गाँधी जी ने कहा था कि जब वे सेवाग्राम और वहाँ के अस्थिपंजर लोगों का खयाल करते हैं तो उन्हें अपना साहित्य निरर्थक मालूम होने लगता है। जिन शब्दों में और जिस शक्ति के साथ गाँधी जी ने भूखी मानवता के लिए पौष्टिक भोजन की माँग की है, साहित्य क्या कभी उससे ऊँचे स्तर पर उठा है? युग-युग से महान् आत्माओं का जो लक्ष्य रहा है, क्या वही 'मानव' साहित्य का लक्ष्य' आज के साहित्यकार के लिए शायद इस रूप में न हो, परन्तु गाँधी जी का लक्ष्य विशुद्ध रूप से यहीं था। उन्होंने साहित्य से छायावाद के स्वप्निल जगत को बहिष्कृत करके मानव-जीवन के यथार्थ को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने कहा : ''कला को जीवन से श्रेष्ठ मानने से तो जीवन का स्रोत ही सूख जाएगा। मेरे लिए तो सर्वश्रेष्ठ कलाकार वहीं है जो सर्वोत्तम जीवन व्यतीत करता है। जीवन व्यतीत करने की कला ही सर्वश्रेष्ठ कला है। मैं कला के प्रति नहीं, कला के थोथे बड़प्पन के अथवा अकड़ के प्रति आपत्ति उठाता हूँ। दूसरे शब्दों में, मैं यों कहूँ कि मेरे विचार में कला के 'मूल्य' भिन्न हैं।''

जीवन अर्थात् मनुष्य में उनकी इस अगाध आस्था का प्रमाण उनकी मान्यताओं से स्पष्ट हो जाता है। सत्य और अहिंसा से भिन्न वे कुछ नहीं थे। सत्य उनके लिए देवता की आराधना का प्रतीक था और अहिंसा मनुष्य में उनकी आस्था का। उनके व्यक्तित्व जीवन में जो स्थान सत्य का था वहीं स्थान अहिंसा का उनके सार्वजनिक जीवन में थ। अर्थात् अपने सार्वजनिक जीवन में उन्होंने एक क्षण के लिए भी मनुष्य में अपनी आस्था को नहीं डिगने दिया। वे अपने आपमें स्वयं एक आन्दोलन थे। नेता थे। उनका लक्ष्य था स्वराज्य अर्थात् मनुष्य की स्वतन्त्रता।

उनका एक गुण जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह है, संवेदना उनके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक से अधिक आत्मीयता स्थापित करने की चेष्टा उन्होंने सदा की है। वे सम्बन्धित व्यक्ति की सहज भावनाओं को छू कर उस पर विजय प्राप्त करते थे। वे स्वयं मानव थे, दूसरों को भी मानव स्वीकार करते थे वे न केवल विशेषणों का ही प्रयोग करते थे अपितु किसी व्यक्ति की दुर्बलता भी उनसे छिपी नहीं रहती थी। सत्य का उपासक व्यक्तित्व का अधूरा चित्रण कर ही नहीं सकता। गाँधी जी ने भारत के तत्कालीन नेताओं का जो तुलनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शिनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। उन्होंने अपने युग के महापुरुषों के साथ-साथ अपने सम्पर्क में आए हुए साधारण-से-साधारण व्यक्ति के बारे में भी लिखा है। गाँधी जी जहाँ पारखी थे। वहाँ विनोद प्रिय भी थे। उन्होंने कहा था कि यदि में विनोद प्रिय न होता तो कभी का मर गया होता। उनके लेखन में भी विनोद की फल्गु धारा कहीं-कहीं बड़ी सुन्दरता से उभर

उठी है। उन्होंने मीठी चुटकी ली है, लेकिन व्यक्ति के प्रति सहज शिष्टता में कहीं कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने जीना सीखते-सीखते जिलाना सीख लिया था। वे सबसे पहले और सबके अन्त में केवल मनुष्य थे गाँधी जीका साहित्य मनुष्य की खोज का साहित्य है। इसी कसौटी पर उसको परखा जा सकता है।

गाँधी जी ने शब्दों की मितव्ययिता के बारे में जिस गहराई से सोचा और विचार किया वह अद्‌भुत है। दूसरे के प्रति भले बनने के लिए हम बहुत बार अत्यधित मिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं, जो सदैव सत्य के अनुरूप नहीं होती। स्वर्गीय के.जी. मश्रूवाला, तत्कालीन सम्पादक हरिजन तथा गाँधी दर्शन के अन्यतम भाष्यकार, ने एक अमरीकी मिशनरी रिचर्ड राल्फ कीथन से, जिन्होंने भारत-आगमन के तत्काल बाद भारत को अपना दूसरा घर बना लिया था, किसी समाचार-पत्र के नहीं अपितु एक विचार-पत्र (जैसा कि गाँधी जी अपने साप्ताहिक को कहा करते थे) के सम्पादक के विषाद का जिक्र करते हुए कहा था कि भारतीय संवाददाताओं की यह एक वाहियात आदत होती है कि वे अपने संवाद में अनेक और कभी-कभी भारी-भरकम विशेषणों का प्रयोग करते हैं। पश्चिमी देशों में यह खराब शैली समझी जाती है, क्योंकि विशेषण से संज्ञा कमजोर पड़ जाती है, किन्तु गाँधीवादी दृष्टिकोण से यह असत्य-भाषण का स्पष्ट उदाहरण है। मश्रूवाला ने गाँधी जी के शब्दों को दोहराते हुए कहा—''मैं जितने ही अधिक विशेषणों का प्रयोग करता हूँ, अपने लेखों तथा भाषणों में मैं उतना ही अपने को मिथ्याभाषी अनुभव करता हूँ... ।'' गाँधीजी अलंकारों का सहारा लिए बिना सीधे-सादे गद्य में तथ्य कथन करने में सिद्धहस्त थे। वह सदैव न्यूनोक्ति, विशेषणों को टालने तथा 'लेखन में भद्रता' पर जोर देते थे। उनके एक सहकर्मी श्री चन्द्रशेखर शुक्ल ने उल्लेख किया है कि फरवरी, 1934 में, सलेम स्थित स्वर्गीय श्री. विजय राघवाचारी के मकान पर उनकी गाँधी जी ने इसलिए भर्त्सना की थी; क्योंकि उन्होंने लन्दन में अगाथा हैरिसन को लिखे अपने साप्ताहिक पत्र-समाचार में कोरे तथ्य देने के बजाय शासन की आलोचना की थी। ऐसी समीक्षा को गाँधी जी 'शब्द-चातुर्य' कहते थे। उन्होंने श्री शुक्ल को इसलिए भी फटकारा था कि उक्त पत्र में उन्होंने जवाहरलाल नेहरू के लेख सम्बन्ध में 'ब्रिलिएन्ट' विशेषण का प्रयोग किया था, जो उनकी नजरों में नेहरू जी को दिया गया एक प्रमाण-पत्र था। गाँधी जी जिस उद्देश्य से लिखा करते थे वह था—''अपने विचारों का प्रसार करना केवल लेखन मात्र नहीं।'' किन्तु उनका यह भी कहना था—''पाठक उस संयम से अभिज्ञ नहीं हो सकता जिस संयम का प्रयोग मुझे विषयांग तथा शब्दावली चुनने के लिए करना पड़ता हैं...बहुधा मेरा दम्भ मुझे इस बात के लिए प्रेरित करता है कि मैं तीखी अभिव्यक्ति का प्रयोग करूँ तथा मेरा आक्रोश मुझे कटु शब्दावली का प्रयोग करने को बाध्य करता है। यह एक अग्नि-परीक्षा होती है; किन्तु इस घास-पात को निकाल फेंकने की एक अच्छी खासी कसरत।''

यद्यपि गुजराती और अंग्रेजी को छोड़ कर दूसरी भाषाओं में उन्होंने बहुत ही कम लिखा है; परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रभावित अवश्य किया है। उन्होंने कला और साहित्य को ग्रामोन्मुख कर दिया। उन्होंने युद्ध का विरोध करके सब धर्मों की समानता पर जोर दिया। और यहीं समानता उन्होंने मानव मात्र के लिए अनिवार्य कर दी। उनका युग इसी मानवतावादी कला का प्रतीक है...उनका विचार दर्शन (अर्थात् साहित्य) व्यक्ति के अपने में डूबकर खोजने का दर्शन है, अधिकारों का नहीं। शिल्पी नन्दलाल बोस से गाँधी जी ने कहा था कि जो मानव संस्कृति का अंग है उन कलाओं को वे हेय दृष्टि से नहीं देखते पर जैसा कि श्री दामोदर दास मूदड़ा ने लिखा है, उनका संगीत प्रेम और खादी प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं..., यह सिक्का है मानव प्रेम यही कारण है कि वे सर्वोच्च सौन्दर्य की ओर ले जाने वाली कला को उपयोगिता से अलग नहीं करते। वे प्रेम और सत्य के उत्कृष्ट प्रकटीकरण को ही कला का पूर्ण प्रदर्शन मानते थे। उन्होंने इसे एक स्थान पर बैठ कर और सारे कागज सामने रखकर नहीं लिखा है अपनी याददाश्त के आधार पर जैसा प्रसंग याद आ गया लिखा है। भले ही इससे कालक्रम की पूरी रक्षा न हो सकी हो, पर उस युग का इतिहास कहीं खण्डित नहीं हुआ है। बल्कि परम्परागत रूढ़िवादी इतिहास से यह सहस्रगुणों में प्रामाणिक और प्रेरक हैं। उनकी यह आत्मकथा 1920 में समाप्त हो जाती है, उसके बाद जनवरी 1948 को शहीद हो जाने तक का उनका जीवन खुली किताब की तरह है।

आत्मकथा के अतिरिक्त उनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाओं में आती हैं : (1) दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (2) अनासक्ति योग (3) गीता बोध (4) आरोग्य की कुंजी (5) सर्वोदय (6) मेरे जेल के अनुभव (7) यरवडा के अनुभव (8) सत्याग्रह आश्रम का इतिहास (9) रचनात्मक कार्यक्रम (10) हिन्द स्वराज (11) मंगल प्रभात (12) आश्रमवासियों से। उपरोक्त सभी रचनाएँ प्रायः पुस्तक रूप में ही लिखी गई, यद्यपि इनका सृजन एक ही समय में नहीं हुआ।

उनकी सत्याग्रही कार्यपद्धति को समझने के लिए उनकी संस्मरणात्मक रचनाओं में 'मेरे जेल के अनुभव' और 'यरवडा के अनुभव' में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका की जेल-यात्रा के समय जो अनुभव प्राप्त किए उनका बड़ा सहज और मार्मिक वर्णन किया है। छोटी-से-छोटी और साधारण से साधारण बात भी उनकी प्रेम-प्लवित दृष्टि से नहीं बच सकी है। प्रत्येक घटना का उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण किया है। सत्य का शोधक ऐसी लापरवाही कर ही नहीं सकता। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात कहीं है, ''मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं। सत्य की अपनी खोज में मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नई बातें सीखा भी हूँ। उम्र में भले ही मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो

जाएगा। मुझे एक ही बात की चिन्ता है और वह है प्रतिक्षण सत्य नारायण की वाणी का अनुसरण करने की मेरी तत्परता।

'यरवडा के अनुभव' में गाँधी ने भारत की प्रथम जेल यात्रा (1922) के अनुभवों का वर्णन किया है। इस छोटी-सी पुस्तिका में एक आदर्श सत्याग्रही कैदी के रूप में गाँधी जी के दर्शन होते हैं। इसमें उन्होंने जेल अधिकारियों, कैदी वार्डरों, सत्याग्रही कैदियों तथा अपने अध्ययन के बारे में अत्यन्त दिलचस्प बातें तफसिलवार लिखी हैं। प्रारम्भ में इसमें उन पर चलाए गए मुकदमें की पूरी कार्यवाही और अन्त में अधिकारियों के साथ हुआ उनका पत्र-व्यवहार भी सम्मिलित कर लिया गया है।

'सत्याग्रह आश्रम का इतिहास' इन रचनाओं से कुछ भिन्न है। उनके लिए आश्रम का अर्थ सामूहिक धार्मिक जीवन रहा। किस प्रकार उनके मन में इसकी कल्पना का उदय हुआ और कैसे-कैसे इसका विकास हुआ यह संक्षेप में बताने के बाद सत्याग्रह आश्रम, साबरमती की स्थापना, विकास और उसमें होने वाली विविध प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया है। सत्य, अंहिसा, प्रार्थना, ब्रह्मचर्य से लेकर खेती और गौ सेवा को व्यावहारिक जीवन से जोड़ने में क्या-क्या अनुभव हुए, उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन गाँधी जी ने किया। चोर और उनके लिए पहरा तथा आश्रम में होने वाली खुशी और दुःख के प्रकरण जितने दिलचस्प हैं, उतने ही हिन्दुस्तान के नवनिर्माण के खयाल से महत्त्व के हैं। काका साहेब कालेलकर के शब्दों में—''इस पुस्तक को भूतकाल के एक बोधप्रद प्रयोग के बयान के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि राष्ट्रपिता द्वारा आने वाले 500 वर्षों की राष्ट्रीय साधना के लिए किए गए एक स्फूर्तिदायक प्रयोग के रूप में इसका अध्ययन करके संकल्प बल प्राप्त करने के लिए, इस इतिहास का अध्ययन होना चाहिए।''

आश्रमवासियों के लिए गीता का अर्थ सुगम करने के उद्देश्य से उन्होंने उसके प्रत्येक अध्याय का सरल भाषा में सार प्रस्तुत किया है, वह 'गीता बोध' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त गीता के भक्ति प्रधान श्लोकों का भी अलग से संग्रह किया है जो 'गीता प्रवेशिका' के नाम से प्रसिद्ध है। अपनी दृष्टि से गीता को सबके लिए सहज-सुगम बनाने में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। यहाँ तक कि गीता के शब्दों का अर्थ सहित स्थल निर्देश करते हुए, 'गीता पदार्थ कोष' की भी रचना उन्होंने की है।

वे यह अच्छी तरह जानते थे कि शिक्षा का आरम्भ बच्चों से होता है। उनसे माँग की गई कि उन्हें कैसी पुस्तकें पढ़ाई जानी चाहिए, तो उन्होंने अपने जेल प्रवास में 12 पाठों वाली एक छोटी-सी बाल पोथी तैयार कर दी। जैसा कि हो सकता था इस पोथी की रचना उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से की, सिद्धान्त की दृष्टि से नहीं। सही शब्दों के सही प्रयोग पर उन्होंने विशेष बल दिया। यह पोथी शिक्षकों के लिए है। उन्हीं के शब्दों में, 'सच पूछा जाए तो मेरी बाल पोथी शिक्षकों के लिए है। शिक्षक मुँह से

ही शिक्षा दें। पुस्तकों द्वारा शिक्षा न दी जाए। जिस देश में शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों का ढेर है, उस देश के बालकों के दिमाग में क्या भरा जाता है, शायद भूत ही भरा जाता होगा। वहाँ बालकों की विचार शक्ति नष्ट हो जाती है।''

गाँधी जी जब यरवदा जेल में थे तब नियम से आश्रमवासियों को साप्ताहिक प्रवचन लिख भेजा करते थे उसी का सुफल हैं ये दो पुस्तकें 'मंगल प्रभात' और 'आश्रमवासियों से' सन् 1930 में उन्होंने अपने प्रवचनों में व्रतों की व्याख्या की थी और समझाया था कि यदि ईश्वर की झाँकी प्राप्त करनी है, तो शरीर जाए या रहे धर्म का पालन करना ही है, ऐसा भव्य निश्चय करना होगा। 'मंगल प्रभात' में उन्हीं व्रतों की चर्चा है। 1932 के प्रवचनों में आश्रम जीवन के विषय में छुटपुट विचारों की चर्चा की है, जिसमें 'आकाश दर्शन' जैसे विषय भी हैं। वे लिखते हैं—''आकाश जैसा स्वच्छ है, वैसे हम स्वच्छ हों तारे जैसे तेजस्वी हैं, वैसे तेजस्वी हों। वे जैसे ईश्वर का मूक स्तवन करते जान पड़ते हैं वैसे हम करें। वे जैसे अपना रास्ता एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते, वैसे हम भी अपना कर्तव्य न छोड़ें।''

गाँधी जी का विपुल साहित्य उन असंख्य लेखों के रूप में बिखरा हुआ है जो वे अपने पत्रों के लिए निरन्तर लिखा करते थे। उनका अध्ययन किए बिना गाँधी साहित्य की भूमिका को समझना असंभव जैसा है। वे अपने समस्त लिखे या बोले साहित्य के प्रकाशन का अधिकार नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद को दे गए हैं। उसने उनके लेखों के जो संग्रह प्रकाशित किए हैं उनमें उल्लेखनीय हैं : (1) अहिंसक समाजवाद की ओर (2) अहिंसा का पहला प्रयोग (3) आर्थिक और औद्योगिक जीवन : उनकी समस्याएँ और हल (4) कुदरती उपचार (5) खादी क्यों और कैसे (6) खुराक की कमी व खेती (7) गाँधी जी की अपेक्षा (8) गौर सेवा (9) ग्राम स्वराज्य (10) नई तालीम की ओर (11) प्रजातन्त्र : सच और झूठा (12) बापू की कलम से (हिन्दी के मूल लेख) (13) मेरा धर्म (14) मेरे सपनों का भारत (15) मोहन माला (16) राम नाम (17) राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी (18) विद्यार्थियों से (19) शिक्षा की समस्याएँ (20) सच्ची शिक्षा (21) सत्य की ईश्वर है (22) सर्वोदय (23) स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ (24) हम सब एक पिता की सन्तान (25) हमारे गाँवों का पुनर्निर्माण।

इनके विषय इनके शीषकों से सहज ही समझ में आ सकते हैं। अपवाद स्वरूप केवल दो पुस्तकें हैं—बापू की कलम से और 'हम सब एक पिता सन्तान'। गाँधी जी ने अपनी सारी रचनाएँ प्रायः अंग्रेजी और गुजराती में लिखी हैं। हिन्दी में जो थोड़े से लेख और टिप्पणियाँ लिखीं उनका संग्रह 'बापू की कलम से' नामक पुस्तक में किया गया है। इसका महत्त्व गाँधी जी की हिन्दी-शैली को समझने में अधिक है। काका साहब कालेलकर जी के शब्दों में—''अगर गाँधी जी के विचारों में और विचार शैली में सत्य की सरलता है, युग-दृष्टि को साफ करने की क्षमता है और मानव कल्याण की भावुकता है, तो उनकी शब्दावली, उनकी वाक्य रचना और उनके बनाए हुए

मुहावरे परिचित होने पर भी किसी को बेढ़ेंगे नहीं लगेंगे। बल्कि अनुकरणीय और आदरणीय लगेंगे। भाषा ऐसे ही बनती है। समर्थ समाज सेवक, तेजस्वी लोकनेता और जनता साहित्य स्वामी जो भाषा लिखते हैं, वहीं प्रचलन पाती है और सर्वमान्य होती है।''

'हम सब एक पिता की सन्तान' में गाँधी जी के विभिन्न विषयों पर लिखे हुए कुछ ऐसे चुने हुए सुन्दर लेखों का संग्रह किया गया है, जो उनका सही-सही प्रतिनिधित्व कर सकते हों और जिनके द्वारा उनके विचारों, कार्यों और कार्य-पद्धति को समझा जा सके। संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक समिति यूनेस्को को संसार की आज की विषम परिस्थितियों में गाँधी जी के कार्य और सन्देश का इतना अधिक महत्त्व लगा कि उसने इन दोनों का परिचय जगत् को कराने के आशय से गाँधी जी के वचनों से कुछ महत्त्वपूर्ण वचन चुन कर 'ऑल मैन आर ब्रदर्स' नामक एक अंग्रेजी संग्रह प्रकाशित किया। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है।

'मेरे समकालीन' एक और ही कारण से उल्लेखनीय रचना हो गई है। अपने व्यस्त जीवन में अनेक कारणों से गाँधी जी ने अनेक व्यक्तियों के बारे में लिखा है। साधारणतः वे अपने सहयोगियों के बारे में लिखते रहे। कभी उन्हें श्रद्धांजलियों के रूप में लिखना पड़ा। कभी किन्हीं शंकाओं के निराकरण और समाधान करने के लिए भी उन्हें लिखना पड़ता था। अपने आन्दोलनों में भाग लेने वालों या उनका विरोध करने वालों के विषय में भी उन्होंने बार-बार लिखा है। उनके सारे साहित्य में सुन्दर चित्र बिखरे पड़े हैं। उन्ही में से 250 से कुछ अधिक चित्रों का संग्रह 'मेरे समकालीन' में संकलित हुआ है। उन्होंने स्वयं कहा है—'मेरे सारे कार्यों का जन्म मानव जाति के प्रति रहे मेरे अखण्ड और अविच्छिन्न प्रेम से हुआ है।' गाँधी जी का साहित्य मानव जाति के प्रति इसी अखण्ड और अविच्छिन्न प्रेम का साहित्य है। यह प्रेम उनके सत्य की उस शोध से अलग नहीं जिसके लिए वे जीते थे।

पत्र-साहित्य का अपना महत्त्व है। गाँधी जी के सन्दर्भ में वह और भी महत्त्वपूर्ण हो उठा है। न जाने किस-किस को किन-किन विषयों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है। जैसे आकाश की कोई सीमा नहीं, वैसी ही स्थिति है इन पत्रों की। जो शब्द मीरा बहन ने उन्हें प्राप्त पत्रों के बारे में लिखे हैं वे उनके सभी पत्रों के बारे में कहे जा सकते हैं। इन पत्रों में बापू के जीवन के पिछले बाईस वर्षों का प्रतिबिम्ब है। सबको दिखाई देने वाला भव्य और नाटकीय बाह्य जीवन नहीं, बल्कि वह आन्तरिक व्यक्तिगत जीवन जो बाहरी दुनिया के तमाम बखेड़ों से प्रभावित हुए बिना आध्यात्मिक खोज के अपने सन्तुलित और सीधे मार्ग पर चलता रहा नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद ने ऐसे सात संग्रह प्रकाशित किए हैं—(1) आश्रम की बहनों से, (2) सरदार वल्लभ भाई के नाम (3) कुसुम बहन देसाई के नाम, (4) मणिबहन पटेल का नाम, (5) कुमारी प्रेमा बहन कंटक के नाम, (6) बीबी अमतुस्सलाम के नाम (7) मीरा के नाम।

सस्ता साहित्य मण्डल ने भी 'बापू के पत्र जमनालाल रजी के नाम' तथा 'गाँधी जी की छत्र छाया में' घनश्यामदास बिड़ला के नाम पत्र-इस प्रकार से दो संग्रह छापे हैं।

अनुवाद भी उन्होंने किए परन्तु जो अर्थ हम अनुवाद का समझते हैं वैसे अनुवाद नहीं। सार रूप में स्वतन्त्र रूप में अपने परिवेश की पृष्ठभूमि पर ही आधारित करके उन्होंने जो उन्हें अच्छा लगा उसे स्वीकार किया। रस्किन के 'अन टू दिस लास्ट' की चर्चा आ चुकी है। यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने अपने मुकदमे में अपनी सफाई में जो भाषण दिया था, उसे उन्होंने सार रूप में; 'एक सत्यवीर की कथा' अथवा 'सुकरात की सफाई' के नाम से प्रस्तुत किया। इस प्रकार तोलस्तोय की सुप्रसिद्ध कहानी 'मूरखराज' का अनुवाद भी उन्होंने किया था। उन्होंने लिखा है। इस कहानी का शब्दार्थ अनुवाद नहीं किया है, बल्कि उसका रहस्य ठीक-ठीक समझ में आ जाए और अपनी भाषा में ठीक लगे इस प्रकार लिखने का प्रयत्न किया है। नाम वाम भी बदल दिए हैं। एक और पुस्तक है नीति धर्म मि. साल्ट नामक एक अमरीकी विद्वान की पुस्तक के आधार पर उन्होंने इसकी रचना की है। वे धर्म और नीति अलग नहीं मानते थे। धर्म ही नीति है। नीति को धर्म के अनुसार होना चाहिए। नीति और सच्ची सफलता तथा सच्ची उन्नति सदा एक साथ देखने में मिलती है, यही पुस्तक का सार है। इसकी रचना उन्होंने हिन्दुस्तान आने से पूर्व दक्षिण अफ्रीका में की थी।

यह है उनके विपुल साहित्य की अत्यन्त संक्षिप्त रूपरेखा, लेकिन 1888 से लेकर 1948 के 60 वर्ष के अपने सार्वजनिक जीवन में उन्होंने लेखों और पत्रों के रूप में जो कुछ लिखा और भाषण-सन्देश के रूप में जो कुछ कहा, उस सबको एकत्र करके और पूरे-पूरे तथा तिथिक्रम से प्रकाशित करने का प्रयत्न भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने उनके जीवन के किसी भी काल के कहीं भी उपलब्ध समूचे साहित्य को 'सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित करने का आयोजन किया। यह आयोजन उसी के शब्दों में—''राष्ट्र स्वातंत्र्य शिल्पी के प्रति राष्ट्र का ऋण चुकाने की भावना मात्र से नहीं किया, बल्कि इस दृढ़ विश्वास से किया है कि भावी पीढ़ियों के लिए उन महात्मा के तमाम भाषणों, लेखों और पत्रों को एक स्थान पर एकत्र करके छाप रखना जरूरी है।''

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में कहा जा सकता है : ''अगर कभी कोई ऐसा पुरुष हुआ, जिसने जीवन को सम्पूर्ण रूप में देखा और जिसने अपने आपको सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा में निछावर कर दिया, तो वह निश्चय ही गाँधी जी थे। उनका उद्देश्य किसी जीवन दर्शन का विकास करना या मान्यताओं अथवा आदर्शों की प्रणाली निर्मित करना नहीं था... तथापि सत्य-अहिंसा में उनका दृढ़ विश्वास था और जो समस्याएँ उनके सामने आई उनमें इनके व्यावहारिक प्रयोग को ही उनकी शिक्षा और जीवन दर्शन कहा जा सकता है।

उनका सम्पूर्ण साहित्य इसी जीवन दर्शन से ओतप्रोत है। उन्होंने सहज को साध लिया था, इसलिए उनके विचारों में आश्चर्यजनक ताजगी है। गाँधी-नीति के एक और व्याख्याता श्री हरिभाऊ उपाध्याय के शब्दों में, ''जैसे नागधिराज हिमालय की रम्य पर्वत श्रेणियाँ ज्यों-ज्यों उनके अन्दर प्रवेश करते हैं और ऊपर चढ़ते हैं, एक के बाद एक हमारे मन को मोह लेती हैं और उत्तरोत्तर आकर्षण का केन्द्र बनती जाती है। त्यों-त्यों बापू का साहित्य हमें मनमोहक अलंघ्य, नित्य नवीन स्फुर्ति देने वाला लगता जाता है।''

गाँधी जी का विकास एक परम्परागत साहित्यिक के रूप में नहीं हुआ। इस दृष्टि से तो केवल उनकी आत्मकथा और कुछ दूसरे संस्मरणात्मक ग्रन्थ ही इस 'श्रेणी' में आ सकते है। उनका विपुल साहित्य तो समय-समय पर लिखे गए नीतिपरक लेखों, पत्रों के उत्तरों और भाषणों के रूप में बिखरा पड़ा है। गाँधी नीति के प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य जे.बी. कृपलानी के शब्दों में कहें, तो एक लेखक के रूप में गाँधी जी ने अपनी मातृभाषा गुजराती और अंग्रेजी में भी एक विशिष्ट साहित्यिक शैली का निर्माण किया है। वह शैली सरल, विशद एवं सब प्रकार के आडम्बर या अलंकार से रहित है। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सब प्रायः दीन, दलित एवं समाज के निम्न वर्ग के लोगों को उद्दिष्ट करके लिखा है। उन्होंने राजाओं, महाराजाओं, राजकुमारों, शासकों या धनिकों के क्रियाकलापों को लेकर किसी नाटक, उपन्यास, या कहानी की रचना नहीं की। उनके लेखों की विषयवस्तु आध्यात्मिक होने पर भी उसमें किसी देवी-देवता या किसी धर्म या सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की चर्चा नहीं रहती।

गाँधी जी को अभिवादन करते हुए हिन्दी के वरिष्ठ लेखक एवं चिन्तक डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं कि जीवविज्ञान और मनोविज्ञान आदि शास्त्रों ने मनुष्य की एकरूपता को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है। लेकिन सामाजिक रीति-नीति और संस्कारों के अध्ययन से मनुष्य की दृष्टि और भी उदार बनेगी और देश तथा काल की सीमा को लाँघकर सौन्दर्य और माधुर्य का रस ले सकने की सामर्थ्य इस मानवीय संस्कृति की नींव को मजबूत करेगी। आज भी ऐसे महामानव मिल जाते हैं, जो देश और काल की संकीर्ण सीमाओं को भेद कर यथार्थ मानव धर्म को समझ लेते हैं। हमारे देश के रवीन्द्रनाथ और गाँधी जी ऐसे ही नर-रत्न थे (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड 7 प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ 578 मूल्य : 250 वर्तमान सन्दर्भ पृष्ठ : 139)

गाँधी चिन्तन के प्रभाव एवं प्रवाह को अपने में समाकर चलने वाली तीन-तीन पीढ़ियों का साहित्य के क्षेत्र में जो योगदान है वह अविस्मरणीय है। गाँधी जी की निगाहों में साहित्य की ताकत जीवन की ताकत के समान सत्य ही रही। सत्य को उन्होंने ईश्वर का रूप माना। ईश्वर सत्य है इस अपनी शोधयात्रा का अगला पड़ाव उन्हें इसीलिए सत्य ही ईश्वर है इस रूप में साक्षात्कृत होते हुए दिखाई दिया।

साहित्यिक अपनी दृष्टि से सत्य को परखता है, उसका अनुभव करता है और उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। रसिक से मान्यता प्राप्त करता है। रसिकमान्य साहित्य सफल साहित्य कहलाता है अपने साथी के सम्बन्ध में एकात्मता का विचार ही साहित्य का विचार जब होता है, तब अहिंसा धर्म का उद्घोष किया जा सकता है। गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा के माध्यम से ही साहित्य निर्मित के विचार को पुष्टि प्रदान की है। वे साहित्य को सत्य और धर्म का सारांश मानते रहे। वे चाहते थे कि जीवन का सत्य साहित्य के माध्यम से जन-जन तक पहुँचे। आम आदमी तक पहुँचने वाला साहित्य ही कालजयी होता है। आसान, सरल, सादगीभरा और अनलंकृत सत्य ही जीवन और साहित्य की चेतना को स्पर्श कर सकता है यह उनकी मान्यता थी। वे कहते हैं कि ऋतु एवं निर्मल अन्तःकरण से निःसृत साहित्य की धारा गंगा के प्रवाह के सामन जन-जन का हित कर सकती है। ऐसी भाषा में साहित्य का अन्तःकोष खुलता है। साहित्य में न केवल आसान भाषा की आवश्यकता होती है, अपितु उसमें तलस्पर्शी चिन्तन होता है। मन की मन से की गई बात होती है। साहित्य में लेखक का हृदय पाददर्शिता से भरपूर होना आवश्यकता है। साहित्य आम आदमी के मन-मस्तिष्क को सिंचित कर वाला हो यह गाँधी जी के चिन्तन का प्रमुख अंग है। गाँधी चिन्ता और चिन्तन की आधार भूमि साहित्य का जनमान्य होना है। उनके द्वारा की गई साहित्य सेवा अनेक अर्थों में विशिष्ट मानी जा सकती हैं। आज पूरी दुनिया में गाँधी जी प्रासंगिक सिद्ध हुए हैं। अमरिका के अध्यक्ष बराक ओबामा भी डंके की चोट इस बात को कहते हैं कि वे गाँधी जी के पुण्य के कारण राष्ट्रपति के पद पर आसीन हैं। आज सर्वत्र गाँधी विचार को अलग-अलग कोणों से समझने की होड़ है। इस क्रम में गाँधी के साहित्य के सम्बन्ध में सोचा जाना आवश्यक कदम है।

आदिकाल और सन्त साहित्य पर शोध

प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सरहपाद को पहले कवि के रूप में महापण्डित राहुल सांकृतत्यायन ने स्थापित किया। हिन्दी साहित्य के आदिकाल को समझने के लिए अप्रभ्रंश का बोध आवश्यक है। सरहपाद आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। सरहपाद के पैदा होने की परिस्थितियों को समझना तत्कालीन हिन्दू और बौद्ध समाज के भीतर की विसंगतियों को समझना है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में पाँचवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म ने अपनी स्थिति को मजबूत बनाए रखा। इस्लाम के आक्रमणों के कारण पश्चिम में हिन्दू से बौद्ध बना समाज धीरे-धीरे सिमटता चला गया, फिर समाप्त हो गया। जो बुराइयाँ हिन्दू धर्म में थीं वे ही बौद्ध धर्म में भी समाहित हो गई थीं। बौद्ध साधना में गुह्य शब्द प्रविष्ट कर गया था। तमाम प्रकार के बाह्याचार बौद्ध धर्म के हिस्सा बन गए थे। सरहपाद यदि सहज साधना के पक्ष में अपनी बातें कर रहे थे उसका बड़ा कारण बौद्ध धर्म से सम्बन्धित संस्थाओं पर होने वाला बाहरी प्रहार था। उन प्रहारों से उबरना बेहद कठिन था। राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्यधारा' में नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय के विध्वंस होने की पीड़ा के साथ बौद्ध धर्म के नाश की कथा को ऐतिहासिक सन्दर्भों में विस्तारपूर्वक कहा है। वे लिखते हैं—''ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मद बिन-बख्तियार के सामने थोथी निकलीं और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मंजूश्री के मन्दिरों और मठों में हजार-हजार बरस की जमा हुई अपार सम्पत्ति अपने मालिकों और पुजारियों के साथ ध्वस्त हो गई। बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके सरंक्षण और पोषक सेठ-सामन्त पहली अवस्था में रहे, न साधारणत जनता का विश्वास पूर्ववत रहा, तो उन्हें भारत में दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिम की धरती तो उनके हाथ से पहले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर

प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय, निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, मो. : 09997659658
ई-मेल : nkpandey65@gmail.com

(तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिंहल) में अब भी उनके स्वागत करने वाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु-बौद्ध गृहस्थों के अगुआ-बाहर चले गए। भिक्षुओं के अभाव के गृहस्थ बौद्ध धर्म को भूलने लगे, और जिसकी जिधर सींग समाई, उधर चले गए इस प्रकार नालन्दा विक्रमशिला के ध्वंस के बाद पाँच ही छः पीढ़ियों में बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।''

सरहपा ने कर्मकाण्डों के विरोध में लिखा। सहजमार्ग को भी समझाया, गुरु का महत्त्व, कायातीर्थ, वाममार्ग की साधना और सहज संयम की चर्चा की। गत शताब्दी में पचास और साठ के दशक में अपभ्रंश साहित्य पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से बड़ा काम हुआ। भारत के बड़े विश्वविद्यालयों में अपभ्रंश भाषा और साहित्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बना। अपभ्रंश भाषा में विशाल मात्रा में जैन साहित्य लिखा गया है। यह साहित्य चौदहवीं शताब्दी तक लिखा गया। आदिकालीन रासो काव्यों की परम्परा के अतिरिक्त बहुत बड़ी सामग्री इस कालखण्ड की है जिस पर कार्य किया जाना शेष है। इस कालखण्ड के रचनाकारों पर यत्र-तत्र स्फुट मात्रा में सामग्री प्राप्त हो जाती है; लेकिन पूर्ण प्रबन्ध के रूप में कार्य कम ही दिखलाई पड़ता है। विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी का अध्यापन प्रारम्भ हुए लगभग सौ वर्ष हो रहे हैं। आदिकालीन कवियों की सामग्री की अनुपलब्धता जैसे प्रश्न अब नहीं हैं। सुलभता का प्रश्न अवश्य है। आठवीं शताब्दी के सरहपा, शबरपा, स्वयंभू तथा भुसुकपा; नवीं शताब्दी के लुईपा, विरुपा, डोम्बिपा, दारिकपा, गुंडरीपा, कुक्कुरिपा कमरिपा तथा कण्हपा चर्चित रचनाकार हैं। गोरखनाथ इस शताब्दी के सबसे बड़े कवि हैं। निश्चित रूप से इनकी रचनाओं पर कई काम हुए हैं। नाथपंथ तथा उनकी साधना पद्धति और पूरी परम्परा पर कार्य करने की संभावना बहुत है। नाथपंथी कृतियों में विचार की प्रधनता के साथ ही तत्कालीन भाषा और संप्रेष्य शब्दावली में रचित साहित्य भी है। दसवीं शताब्दी में पुष्पदन्त, देवसेन, योगीन्दु, शान्तिपा, रामसिंह तथा धनपाल जैसे बड़े कवि हिन्दी साहित्य को मिले। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे इतिहासकार हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ संवत् 1050 से मानते हैं। 11वीं शताब्दी के बड़े कवियों में बब्बर, अब्दुर्ररहमान, कनकामर मुनि का जिनदत्त सूरि है। बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र जैसा कोई अन्य बड़ा नाम हिन्दी साहित्य में दिखलाई नहीं पड़ता। इस काल के अन्य विशिष्ट कवियों में हरिभद्र सूरि, विद्याभर, शलिभद्र सूरि, सोमभद्र सूरि, जिनपद्म सूरि तथा विनयचन्द सूरि प्रमुख हैं। चन्दबरदाई बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के प्रमुख कवि हैं। तेरहवीं शताब्दी के चर्चित कवियों में लक्खण, जज्जल, हरिब्रह्म, अम्बदेव सूरि, राजशेखर सूरि तथा बहुत से अज्ञात कवि हैं। पूर्ववर्ती और परवर्ती अपभ्रंश में पूरा अपभ्रंश साहित्य विभाजित है। अवहट्ठ नाम से तथा पुरानी हिन्दी के नाम से बहुत-सी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रायः सभी भारतीय भाषओं में नाथ साहित्य प्राप्त होता है। शैव दर्शन और शैव साहित्य के साथ नाथ साहित्य जुड़ता है। नाथ साहित्य ने भक्ति

साहित्य के रचनाओं को प्रभावित किया। बांग्ला भाषा में बड़ी मात्रा में नाथ साहित्य रचा गया। नाथ सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार भी बंगाल और असम में खूब हुआ। यह दुःखद है कि चारण काव्य को प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए हिन्दी का विद्यार्थी प्रायः अध्ययन का विषय नहीं बनाता।

हिन्दी के अतिरिक्त तेलुगु, मराठी और पंजाबी भाषा में चारण साहित्य रचा गया। चारणों ने हमेशा केवल अपने आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा ही नहीं की, उनके साहित्य में उस युग का सत्य ढूँढा जा सकता है। भारतीय इतिहास और राजनीति की समझ बढ़ाने के लिए भी चारण साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। यह साहित्य शोध की कई दिशाओं को खोलता है। मराठी में लिखे गए वीराख्यान तथा हिन्दी के चारण साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन तत्कालीन साहित्य को समझने के लिए जरूरी है। गुजराती साहित्य में श्रीधर कवि द्वारा लिखा गया 'रणमल्लछन्द' तथा पद्नाथ का 'कान्हडदे प्रबन्ध' की गिनती भी चारण साहित्य के अन्तर्गत होती है। चारण काव्य की परम्परा तमिल साहित्य में भी दिखलाई पड़ती है। सभी दक्षिण भारतीय भाषाओं में इस काव्य को देख सकते हैं। 'भारतीय साहित्य' पुस्तक में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है, ''तमिल में चारण-काव्य संगम काल (ई.पू. 500-200) के आरम्भ से ही मिलता है। पतुप्पाट्टु (दस लघु-वर्णनिकाओं) में से कई में चारण-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। पोरुरात्रुपदइ अर्थात् 'सेनापति की बात' करइकल के राजा की स्तुति में लिखी गई है। कवि ने यहाँ सतत् प्रवहमान कावेरी के कारण चोल राज्य की उर्वरता, कृषि तथा उद्योग-वैभव और चोलराज के विवेक एवं प्रताप के यशोगान किया है। चौथी लघु-वर्णनिका पेरुम्मनात्रुपदइ में कांची के शासक की प्रशंसा है। पद्रिटुप्पात्त में विभिन्न कवियों द्वारा चेर राजवंश के राजाओं का गुण-कीर्तन किया गया है। संगम युग का प्रसिद्ध महाकाव्य सिलप्पदिकारम् भी एक प्रकार से चारण-काव्य ही है। इसका कवि चेर-सम्राट का पुत्र था जो बाद में तपस्वी हो गया था। तेलुगु में श्रीनाथ का लोकप्रिय काव्य पलनाटिवीर-चरित्रम् इस वर्ग का अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है। जनभाषा में रचित काव्य पलनाडु (गुंटूर) के योद्धाओं के शौर्य और साहस का अत्यन्त ओजोदीप्त वर्णन प्रस्तुत करता है। मलयालम के आदिम काव्य-संग्रह 'पझय पाट्टुकल' में अनेक चरित्र-गीत हैं—''उधर पर्सी मैक्वीन ने बड़ी संख्या में मलयालम चारण-गीतों का संकलन किया है।''

हिन्दी की पुस्तकों में इन विषयों पर सामग्री नहीं मिलती हैं। हिन्दी भारत भर में पढ़ी और समझी जाए, साथ ही हिन्दी भाषियों की बड़ी अपेक्षा होती है कि हिन्दी भाषा के साहित्य को भी हिन्दीतर भाषी पढ़ें और जानें। स्थिति यह है कि हिन्दी भाषा के पड़ोसी राज्य महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल के विशेष रूप से आदिकालीन और मध्यकालीन साहित्य से हिन्दी भाषी अपरिचित हैं। कुछ अति प्रसिद्ध और चर्चित सन्त कवियों के नाम और चुनी हुई रचनाएँ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में जरूर पढ़ी और सुनी जाती

है। शोध के धरातल पर कुछ कार्य पुराने शोधार्थियों ने किया था। इधर इन विषयों पर काम करने की प्रवृत्ति प्रायः समाप्त हो गई है।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल को 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है। भक्ति साहित्य में विशेष रूप से सन्त साहित्य पर कार्य करने की पर्याप्त संभावना है। सन्त साहित्य पर हिन्दी में शोध प्रारम्भ होने के साथ ही कार्य प्रारम्भ हुआ। पहला शोध प्रबन्ध पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने निर्गुण साहित्य पर 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' लिखा। उसके पश्चात सन्त साहित्य के संकलन और सम्पादन के क्षेत्र में भी प्रामाणिक और सुविचारित कार्य हुए। पिछले कोई तीन दशकों से इस क्षेत्र में काम करने के लिए उत्सुक शोधार्थी कम दिखलाई पड़ रहे हैं। हिन्दी साहित्य जिन आधारों पर खड़ा है उसमें सबसे बड़ा स्तम्भ सन्त साहित्य का है। सिद्धों, नाथों की साहित्यिक और भाषिक परम्परा का वहन हिन्दी सन्तों ने किया है। युगानुरूप यथोचित परिमार्जन भी किया। साहित्य के भीतर शिल्प के धरातल पर सर्वत्र नूतनता की अनुभूति सन्तों के कारण होती है। अन्य भाषाओं के साहित्य से जुड़ने की मजबूत कड़ी यह साहित्य उपलब्ध कराता है। इस साहित्य को परम्परागत दृष्टि से आचार्यों की परम्परा में भी पढ़ा जाता है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा रामानन्दाचार्य की साधना, लेखन और जीवनचर्या को हम सन्त-साहित्य के भीतर देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं। भगवान महावीर, भगवान बुद्ध तथा दक्षिण भारत के आलवारों की परम्परा को भी यह साहित्य उदारतापूर्वक धारण करता है। रामानुजाचार्य ने शूद्र कहे जाने वाले साधकों को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। इनके गुरुओं में कांचिपूर्ण, महापूर्ण (श्री पेरिय नांबी) तथा गोष्ठी पूर्ण (तिरुक्कोटियुर नांबी) जाति व्यवस्था के अनुसार शूद्र माने जाते थे। गोष्ठी पूर्ण ने उन्हें 'ऊँ नमो नारायणाय' मन्त्र दिया था। महापूर्ण ने वेदों तथा प्रबन्धम का अध्ययन कराया था। कांचिपूर्ण ने इन्हें भागवत् भक्ति की गहन शिक्षा दी थी। रामानुज के गुरुओं में श्री यादव प्रकाश भी थे। दार्शनिक मतभेदों के कारण रामानुज उनसे दूर हो गए। वे यामुनाचार्य के अत्यन्त प्रिय थे। यामुनाचार्य के देहान्त के पश्चात रामानुजाचार्य का अधिकाँश समय कांचिपूर्ण के साथ ही व्यतीत हुआ था। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में अनेक शिष्य निम्न कहीं जाने वाली जातियों के थे। रामानुज के प्रभाव को सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में देखा जा सकता है। शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त से सन्त साहित्य प्रभावित है। वैचारिक तेजस्विता को इस साहित्य ने शंकराचार्य के विचारों से ग्रहण किया। शंकराचार्य की ख्याति जन-जन में हो गई थी। उनके विचार, उनका तत्व चिन्तन, उनके लिखे गए भक्ति स्तोत्र तथा व्यक्तिगत एवं व्यवहारिक जीवन की साधना कथा वार्ता के माध्यम से जन-जन तक पहुँच चुकी थी। उसका प्रयोग सभी भाषाओं में आमजन अपनी-अपनी शब्दावली में कर रहा था। वे इतनी ग्राह्य हो गई थी कि लोगों को सफल जीवन जीने का आधार उसमें दिख रहा था। स्वामी रामानन्द को तो स्वयं राम के रूप में भक्तों ने स्वीकार

किया। यह पंक्ति बहुप्रचलित और स्वीकार्य है—''रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले।।'' उत्तर भारत में भक्ति को लाने का श्रेय भी रामानन्द को दिया जाता है। रामानन्द ऐसे आचार्य और सन्त हैं, जिन्होंने भक्ति के क्षेत्र में जाति को महत्त्व नहीं दिया। सीधे शब्दों में कहा कि ''जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''

इस पंक्ति को समाज ने मन्त्र की तरह धारण किया। उन्होंने सभी जातियों को राममन्त्र की दीक्षा दी। रामानन्द का प्रभाव इतना था कि उस समय के प्रसिद्ध फकीर मौलाना रशीदुद्दीन ने अपनी पुस्तक 'तजकिरातुलफुकरा' में लिखा है, ''इस पुरी (काशी) में पंचगंगा घाट के प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं। तेजः पुंज और और पूर्ण योगेश्वर हैं। वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य हैं। सदाचार एवं ब्रह्मनिष्ठत्व के रूप ही हैं। परमात्मतत्त्व रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। सच्चे भगवत् प्रेमियों एवं ब्रह्मविदों के समाज में उत्कृष्ट प्रभाव रखते हैं। अपितु धर्माधिकार में वे हिन्दुओं के धर्म-कर्म के सम्राट हैं। केवल ब्रह्मबेला में अपनी पुनीत गुफा से गंगा स्नान के लिए बाहर निकलते हैं। उन पवित्र आत्मा को स्वामी रामानन्द कहते हैं। उनके शिष्यों की संख्या पाँच सौ से अधिक है। उस शिष्य समूह में द्वादश गुरु के विशेष कृपा पात्र हैं—''कबीर, पीपा और रैदास आदि। भागवतों के इस समुदाय का नाम 'विरागी' है।'' यह उद्धरण कल्याण के 'सन्त अंक', वर्ष 12वें में दिया गया है।

सन्त साहित्य के सन्दर्भ में शोध की दृष्टि से जब हम चर्चा करते हैं, तो उन सन्तों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है जो वस्तुतः हिन्दी से इतर क्षेत्र से हैं, लेकिन उनका बड़ा दाय हिन्दी साहित्य को है। इस दृष्टि से गुजरात के उन सन्तों का उल्लेख अवश्य होना चाहिए, जिन्होंने हिन्दी में भी लिखा। डॉ. अम्बाशंकर नागर ने इनकी रचनाओं का संग्रह कर सन्तों का परिचय भी दिया है। ये सन्त कवि हैं, ''नरसिंह मेहता, समर्थदास, मीराबाई, माधवदास, दादू दयाल, अखा, मुकुन्द गुगली, आनन्दघन, प्राणनाथ, लालदास, जीवणदास 'ब्रह्मज्ञानी', रवि साहब, खीम साहब, मोरार साहब, लालदास साहब, त्रिकम साहब, जीवणदास, मूलदास, अनुभवानन्द, प्रीतमदास, निरान्त, धीरा भगत, गवरीबाई, जीता मुनि नारायण, महात्मा कल्याणदास, सन्तराम महाराज, सन्त केवलपुरी, त्रिविक्रमानन्द, ब्रह्मानन्द स्वामी, सन्त कुबेरदास 'करुणा सागर', हरिदास, भोजा भगत, मनोहर, हरिसिंह, छोटम, काजी अनवर, देवो साहब, वस्तोविश्वम्भर, दीन दरवेश, कृष्णदास, भाण, नभुलाल, निर्मलदास, महात्यमराम, अर्जुन, मुडिया स्वामी, नृसिंहाचार्य, रत्नो भगत, ओंकारेश्वरी, रंग-अवधूत आदि।''

मराठी के अधिकांश सन्तों ने हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में लिखा। सबके लेखन में समाज सुधार की भावना प्रबल है। 'सन्त पंचायतन' के नाम से लोकप्रिय ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और समर्थगुरु रामदास के जीवन और साहित्य ने मराठी ही नहीं, हिन्दी साहित्य को भी प्रभावित किया। इन सन्तों की चर्चा हिन्दी

साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में हुई है। कुछ शोध कार्य भी हुए हैं। भारतीय सन्दर्भों को जोड़ते हुए प्रत्येक सन्त कवि पर अलग-अलग कार्य की संभावना के साथ तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रचुर जगह है। इनकी भाषा पर भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि से और इनके काव्य के शिल्प तथा शब्द स्रोतों का गहराई से विचार किया जाना अभी शेष है। जनभाषा में लिखा गया यह इतना लोकप्रिय साहित्य है कि जनता संस्कृत प्रेमी होती हुए भी इनकी ओर सहज प्रवृत्त हो गई। ज्ञानेश्वरी के माध्यम से मराठी भाषा में ब्रह्म विद्या को प्रचारित करने का प्रयास पूरे संकल्प के साथ ज्ञानेश्वर ने किया। मराठी भाषा में शास्त्र लिखते समय इस भाषा के प्रति उनके मन में जो स्वाभिमान है और जन-उपयोगिता को लेकर जो आत्मविश्वास है उसकी अभिव्यक्ति 'श्री ज्ञानेश्वरी' में इस प्रकार हुई है : ''माझा मऱ्हाठाचि बोल कौतुके। परि अमृता तेंही पैजा जिंके। ऐसी अक्षरे रसिके। मेळवीन।।'' अर्थात् मेरा काव्य मराठी में है, लेकिन मैं इस काव्य के अक्षरों और शब्दों में इतना माधुर्य भर दूँगा कि यह अमृत को भी पराजित कर देगा।

'सन्त पंचायतन' के सन्तों के अतिरिक्त गोरखनाथ की परम्परा का साहित्य भी मराठी भाषा में उपलब्ध है। ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ, छोटे भाई सोपानदेव तथा छोटी बहन मुक्ताबाई नाथपंथ में दीक्षित हुए थे। मराठी नाथपंथी साहित्य उसकी परम्परा और प्रभाव का अध्ययन शोध की दृष्टि से कई प्रकार के मार्गों को उद्घाटित करता है। मुक्ताबाई के 'ताटी अभंग' प्राप्त होते हैं। ये बड़े भाई के साथ किए गए संवादों के अभंग हैं। ज्ञानेश्वर के 'अमृतानुभव' ग्रन्थ में जगत को मिथ्या नहीं माना गया है। संसार को आनन्दमय बतलाया गया है। ज्ञानेश्वर का 'अमृतानुभव' भक्ति साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि पर विचार करने के लिए बृहत समतल मैदान शोधार्थियों को प्रदान करता है। मराठी सन्तों पर विचार करते समय वारकरी सम्प्रदाय के सन्त सहज ही ध्यान में आते हैं। इन सन्तों का दाय बहुत बड़ा है। सामाजिक समरसता के लिए इनके लेखन पर बार-बार विचार करने की आवश्यकता है। सावता माली कृषक सन्त थे। कृषि से जुड़े हुए तमाम उपादानों को उन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया। उनकी रचनाएँ विशेष रूप से कृषकों के लिए कण्ठहार हो गईं। सावता माली का समय कबीर और रैदास से पहले का है। इनका जन्म 1250 ई. में हुआ था। हम कबीर, रैदास जैसे सन्तों की रचनाओं में पेशापरक शब्दावली और उससे जुड़े मुहावरे को प्रत्यक्ष देखते हैं। श्रम साधना के साथ काव्य रचना की परम्परा सन्तों ने प्रारम्भ की। काव्य कला मर्मज्ञ जिन शब्दों को काव्येतर मानते थे उन शब्दों के प्रयोग से यह साहित्य समृद्ध हुआ है। इस शृंखला में हम गोरा कुम्भार, सन्त चोखामेला का नाम ले सकते हैं। बड़ी संख्या में स्त्री सन्तों ने मराठी में भक्ति साहित्य लिखा। भारतीय समाज में जो सुधार और परिवर्तन की हवा बही उसके मूल में ये सन्त हैं। 600 वर्ष पहले स्त्री सन्तों का पूरी ताकत के साथ लिखना उनकी चेतना के ऊर्ध्वाधर दिशा को

दर्शाता है। सन्त मुक्ताबाई, सन्त जनाबाई, भक्तिन कान्होपात्रा, सन्त बहिणाबाई आदि मराठी की प्रमुख सन्त स्त्री लेखिकाएँ हैं। सन्त जनाबाई ने एक अभंग में कहा है कि मेरा विट्ठल सभी को साथ लेकर चलता है–

''विठु माझा लेकुरवाळा। संगे गोपाळांचा मेळा।।धृ।।
निवृत्ति हा खांद्यावरी। सोपानाचा हात धरी।
पुढे चाले ज्ञानेश्वर। मागे मुक्ताई सुन्दर।।1।।
गोरा कुम्भार माण्डीवरी। चोखा जीवा बरोबरी।
बंका कडेवरी। नामा करांगुळी धरी।।2।।
जनी म्हणे वो गोपाळा। करी भक्तांचा सोहळा।।''

अर्थात् 'मेरा विट्ठल अनेक बच्चों वाला है, उसके साथ बाल गोपालों का मेला लगा रहता है। निवृत्ति को उसने अपने कन्धे पर बैठाया है, सोपानदेव का उसने हाथ पकड़ा है। ज्ञानेश्वर उसके आगे चल रहे हैं, मुक्ताबाई उसके पीछे-पीछे चल रही हैं। गोरा कुम्भार को उसने अपने जाँघ के ऊपर बैठाया है, चोखा महर को हृदय से लगा रखा है। बंका चूड़ीवाले को गोद में लिया हुआ है और नामदेव उनकी कराँगुली पकड़कर चल रहे हैं। जनाबाई कहती हैं, मेरा विट्ठल सभी को साथ लेकर उत्सव मना रहा है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस्लाम के आक्रमण को साथ जोड़कर भक्ति साहित्य पर विचार किया है। मराठी साहित्य के लेखक भी इस दृष्टि से भक्तिकाल की रचनाओं पर विचार करते हैं। 'भारतीय साहित्य' में मराठी खण्ड की लेखिका सुश्री कुसुमावती देशपाण्डे ने विभिन्न कालखण्डों में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा किए गए आक्रमणों की चर्चा करते हुए भक्ति साहित्य के विकास और सन्तों के स्वाभिमान को दर्शाया है। एकनाथ के सन्दर्भ में लिखते हुए बहमनी काल के अत्याचारों का वर्णन और एकनाथ के कार्य का उल्लेख उस काल के निर्मम इतिहास के साथ सन्त साहित्य को जोड़कर पढ़ने के लिए ऐतिहासिक और साहित्यिक सामग्री उपलब्ध कराता है। वे लिखती हैं, ''एकनाथ ने कुछ छोटे आख्यान काव्य और अभंग भी लिखे और 'भारुद'-संज्ञक कुछ अर्द्ध-गद्य रचनाएँ भी कीं। वे केवल सन्त और महावि ही न थे, सक्रिय समाज-सुधारक भी थे। उनके समस्त प्रयत्न इस्लाम के विनाशकारी प्रभाव को रोकने में लगे रहे। स्वराज्य तो पहले ही छिन चुका था। अतः कम-से-कम स्वधर्म की रक्षा करने का उसने प्रत्येक सँभव प्रयत्न किया। फलतः उसका समग्र साहित्य एक ही भावना से ओतप्रोत है। वह है हिन्दुओं के सभी वर्गों में समानता और एकता स्थापित करने की अनन्त कामना।

इस दृष्टि से अलग-अलग प्रान्तों से सत्ता के क्रियाकलाप और सन्तों की रचनाएँ तथा तमाम प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक दबावों के बीच जनाधृत सौन्दर्य बोध की दृष्टि से रचित काव्य बोध का ज्ञान आवश्यक है। साहित्य के केन्द्र में रखकर इतिहास की समझ को विकसित करने तथा प्राप्त सामग्री के संकलन और विश्लेषण की जरूरत है। इतिहास और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से शोध के क्षेत्र में इतिहास बोध से युक्त अनुसंन्धाताओं के लिए पर्याप्त संभावनाएँ हैं। हिन्दी साहित्य के शोधार्थियों का ध्यान आज के हरियाणा, पंजाब में लिखित सन्त साहित्य की तरफ नहीं जाता है। पंजाब के सन्तों पर लिखित साहित्य सहजता से उपलब्ध है। शोध की गुंजाइश बनी हुई है। जब हम पंजाब की बात करते हैं, तो सन्त नामदेव का नाम लिए बिना रात पूरी नहीं होती। 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। सन्त बेनी, श्री गुरुनानक देव, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह के अतिरिक्त अन्य कई सन्त कवि हैं जिन पर तुलनात्मक रूप से काम होना चाहिए। सन्त लल्लेश्वरी कश्मीर की शैव भक्त थीं। लल्लेश्वरी ने निराकर परमेश्वर की उपासना की और समस्त प्रकार के बाह्याडम्बरों का विरोध किया। वे हिन्दू और मुसलमान के बीच भेद को नहीं मानतीं। इनके शिष्यों में नन्द ऋषि थे।

सिन्धी के सन्तों में साईं झूलेलाल तथा सन्त सादाराम साहेब की रचनाओं को हिन्दी के सन्त कवियों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। असम के सन्तों ने ब्रजबुलि में लिखा। राम और कृष्ण दोनों पर लिखित साहित्य असमिया भाषा में है। माधवकंदली, श्रीमन्त शंकरदेव और श्री माधवदेव बड़े रचनाकार हैं। ओडिशा के सन्त कवियों की शुरुआत सन्त जयदेव से होती है। इनका जन्म ओडिशा के केन्दुलि ग्राम में हुआ था। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मण सिंह की सभा में सदस्य थे। इनकी प्रतिष्ठा बंगाल के कवि के रूप में हुई है। 'गीत गोविन्द' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ को लिखने का श्रेय इन्हें है। गेयता के साथ सहज संस्कृत के प्रवाह के कारण यह रचना पूरे भारत में लोकप्रिय हुई। इस कृति ने भारतीय भक्ति काव्य को प्रभावित किया। ओडिशा के सन्त कवियों में दासिया वाउरी, सन्त सारलादास तथा पंचसखा सन्त प्रमुख हैं। निरंजनी सम्प्रदाय भी ओडिशा में विकसित हुआ। इस पंथ पर नाथ पंथ का प्रभाव है। निरंजनी सम्प्रदाय में बड़ी संख्या में सन्त कवि हुए। नाथ साहित्य, निरंजनी सम्प्रदाय और हिन्दी सन्त साहित्य को एक साथ लेकर शोध करने की बड़ी संभावनाएँ हैं। निरंजनी सम्प्रदाय का सामाजिक प्रभाव व्यापक है। पंचसखा सन्त—भक्त बलरामदास, भक्त जगन्नाथदास, भक्त यशोवंतदास, भक्त अनन्तदास और अचुतानन्ददास हैं। इन सन्तों ने संस्कृत के ग्रन्थों को ओडिशा भाषा में प्रस्तुत करने का महत कार्य किया है। चैतन्य महाप्रभु की परम्परा का भी प्रभाव यहाँ के सन्तों पर व्यापक रूप से दिखलाई पड़ता है। पंचसखा सन्तों ने जातिवाचक नामों का परित्याग किया। इनमें से केवल एक ही सन्त जगन्नाथदास ब्राह्मण थे, शेष अन्य जातियों से आए थे। भक्त बलरामदास शूद्र मुनि

के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने स्वयं भी अपने को शूद्र मुनि कहा। बलरामदास की बड़ी संख्या में रचनाएँ प्राप्त होती हैं। हिन्दी के तथाकथित अन्त्यज सन्तों के विचार के क्रम में बलरामदास की रचनाओं पर व्यापक रूप से अभी विचार होना शेष है।

बंगाल के सन्तों में चैतन्य महाप्रभु ने सम्पूर्ण उत्तर भारत को अपनी भक्ति साधना से व्यापक रूप से प्रभावित किया। रामकथा पर चर्चा 'कृतिवास रामायण' के बिना पूरी नहीं होती। बंगाल के बाउल सन्तों के व्यापक साहित्य और उसके प्रभाव का मूल्यांकन हिन्दी भाषी क्षेत्र को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। तेलुगु की कवयित्री मोल्ला ने राम साहित्य पर लिखा। वे कुम्भहारिन थीं तथा ब्रह्मचारिणी के रूप में उन्होंने जीवन व्यतीत किया। तेलुगु भाषा में कई रामायण लिखे गए। इन रामायणों की कथावस्तु और शिल्प विधान पर हिन्दी रामकथा साहित्य को पढ़ते हुए दोनों को जोड़कर विचार करने की जरूरत है। उत्तर और दक्षिण भारत में लिखी गई रामकथा कहाँ, किस प्रकार और क्यों परिवर्तित होती है, यह जानना रोचक तो है ही, उस युग का अध्ययन इतिहासबोध को ही जागृत करने वाला है। तेलुगु के कवि रामकथा लिखने की ओर इतनी बड़ी संख्या में क्यों प्रवृत्त हुए यह विचारणीय विषय है। इस भाष में लिखित प्रसिद्ध रामायण ग्रन्थ हैं—''रंगनाथ रामायण, 'भास्कर रामायण', 'रामाभ्युदयमु', 'रघुनाथ रामायण', 'एकोजी रामायण', 'गोपीनाथ रामायण', 'मधुरवाणीकृत रघुनाथ रामायणु', 'शूरमु सुभद्रमाम्बाकृत सुभदा रामायणु', 'चेब्रोलु सरस्वतीकृत रामायण', 'विश्वनाथ सत्यनारायण कृत श्रीरामायणु', 'कल्पवृक्षमु' आदि।''

सन्त वेमना को आन्ध्र प्रदेश के कबीर के रूप में प्रतिष्ठा मिली है। बहुत बड़ी संख्या में तेलुगु में सन्त कवि हुए हैं। एक-एक के साथ तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। द्रविड़ प्रदेश से तो भक्ति का उत्तर में आगमन ही मना जाता है। तमिल क्षेत्र के सन्दर्भ में बारह आलवारों की चर्चा प्रायः सभी इतिहास ग्रन्थों में की गई है। आलवारों की रचनाओं का संग्रह ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' में न केवल धार्मिक जीवन है अपितु सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन के मार्ग का प्रशस्त आधार है। इस ग्रन्थ को तमिल वेद के रूप में प्रतिष्ठा मिली। तिरुवल्लुवर का समय लगभग दो हजार वर्ष पूर्व का है। 'तिरुक्कुरल' भारतीय साहित्य का अति प्रतिष्ठित और चर्चित ग्रन्थ है। उस समय स्त्री सन्त के लेखन का आना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भक्तिन अव्वय्यार तमिल भाषा की कवयित्री हैं। इन्हें तिरुवल्लुर की बड़ी बहन भी कुछ विद्वान मानते हैं। सन्त कम्बन ने 'कम्बरामायण' की रचना की। केरल के साहित्य को भी नाथपंथ ने प्रभावित किया है। आलवार तथा नायनमार सन्तों का प्रभाव भी मलयालम साहित्य पर पड़ा है। गुणशेखर केरल से ही थे। निरणम् कवियों ने कृष्ण-भक्तिपरक रचनाएँ कीं। मलयालम में लिखे ग्रन्थों में 'अध्यात्म रामायण' को पूज्यता प्राप्त हुई। कवि कुंचन नंब्यार संस्कृत के विद्वान थे। इस भक्त कवि ने मलयालम भाषा में बड़ी मात्रा में लेखन किया। मनुष्य-मनुष्य की एकता का भाव इनके लेखन के मूल में है।

कन्नड़ के सन्त कवियों की गणना अल्लम प्रभु से प्रारम्भ होती है। इस भाषा के बड़े सन्त कवियों में सन्त बसवेश्वर, अक्क महादेवी, सन्त पुरंदरदास तथा सन्त कनकदास का नाम आदर के साथ लिया जाता है। कन्नड़ भाषा में हरिदासों की परम्परा में हजारों भक्तिपरक रचनाएँ की गईं। इन सन्तों की संख्या भी दो सौ से अधिक है। पन्द्रहवीं शताब्दी में कन्नड़ के भजनों की परम्परा श्री पादराय द्वारा मन्दिरों में प्रारम्भ की गई। उनकी रचनाएँ हैं—भ्रमरगीत, वेणुगीत तथा गोपी गीत। कन्नड़ कवि व्यासराय ने बहुत से भक्तिपरक गीतों की रचना की है। 'हरिकीर्तन तरंगिणी' में भी पादराय की रचनाएँ संगृहीत हैं।

हिन्दी सन्त परम्परा के कुछ प्रसिद्ध सन्तों पर खूब कार्य हुए हैं। सन्त जम्भनाथ, सन्त शेख फरीद, सन्त भीखन, सन्त सिंगा, लालदास, सन्त वीरभान, सन्त हरिदास की रचनाओं का व्यापक प्रचार होना चाहिए। इन पर छिट-पुट कार्य तो हुए हैं, व्यापक कार्य होना बाकी है। बाबरी पन्थ के कुछ सन्तों के नामों से हिन्दी साहित्य परिचित है। उत्तर भारत के कुछ अल्पख्यात सन्तों के व्यापक प्रभाव ने एक नई चेतना समाज में भरी। इस दृष्टि से वीरुसाहब, यारीसाहब, केशवदास, बुलाकीराम, सूफी शाह, बूला साहब, भीखा साहब, हरलाल साहब, गोविन्द साहब तथा पलटू साहब को पढ़ा जाना चाहिए। सतनामी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, धामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, शिवनारायणी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पन्थ, पानप पन्थ, रामसनेही सम्प्रदाय आदि पर आधुनिक सन्दर्भों से विचार करने की आवश्यकता है। बाबा कीनाराम, सन्त बुल्लेशाह और दीन दरवेश के साहित्य पर कम लिखा गया है। युगीन सन्दर्भों में पुनर्विचार की जरूरत है। अकेले दादूपन्थ के चार सौ से अधिक सन्त कवियों की सूचना विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होती है। सन्त दादूदयाल की चौथी पीढ़ी तक के सन्तों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अपना जीवन समर्पित किया। हस्तलिखित पोथियों के संरक्षण और सम्पादन कला की उनकी दक्षता के कारण हिन्दी के भक्ति साहित्य का अधिकांश हिस्सा आज सुरक्षित है। सन्त रज्जब, सन्त कमाल, सन्त वेणी, सन्त सधना सन्त धन्ना, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, सन्त तुनसीदास (निरंजनी), सन्त चरणदास, सन्त सहजोबाई, सन्त दयाबाई, सन्त रामचरण, सन्त रामरहस दास, सन्त तुलसी साहिब, साधु निश्चलदास जैसे सन्त कवियों की रचनाएँ अभी तक विश्लेषण की प्रतीक्षा कर रही हैं।

हिन्दी नवजागरण के सन्दर्भ में साहित्य में बहुत चर्चा होती है। उपनिषद् की चर्चा न भी करें, तो नवजागरण पर विचार, पृष्ठभूमि में सन्त साहित्य पर विमर्श के बिना पूरी नहीं होती। डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्ति साहित्य को नूतन दृष्टि से पढ़ा। कविताओं और सन्दर्भों को आधुनिक रचनाओं के साथ जोड़कर नई व्याख्या की। सन्त साहित्य के सन्दर्भ में इस तरह की व्याख्या की आरवश्यकता बनी हुई है। 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश' में तुलसीदास को निराला से जोड़ते हुए बहुत

अच्छी व्याख्या उन्होंने की है—''निराला की चेतना में तुलसीदास हिन्दी-भाषी जनता की जातीय अस्मिता से जुड़े हुए हैं। जहाँ भी प्रान्तीय भाषाओं और उनके साहित्य में स्पर्धा की बात होती है, जहाँ भी हिन्दी की सम्मान-रक्षा का प्रश्न होता है, वह तुलसीदास को आगे कर देते हैं। तुलसीदास की श्रेष्ठता वह वेदान्त के बल पर प्रमाणित करते हैं। वेदान्त के साथ योग को जोड़ देते हैं। यह स्थिति 'तुलसीदास' कविता में है और सन् 1930 से पहले लिखे हुए अधिकांश निबन्धों में है, जहाँ भी तुलसीदास अथवा रवीन्द्रनाथ के साथ तुलसीदास का उल्लेख होता है। लेकिन 'राम की शक्तिपूजा' में योग और वेदान्त से भिन्न एक अलग तत्त्व भी है। वह तत्त्व भक्ति का है। सन् 1930 के पहले वाले निबन्धों में निराला की प्रवृत्ति है, तुलसीदास में ज्ञान पक्ष के ऊपर जोर देना, उन्हें परम् ज्ञानी सिद्ध करके उनकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करना। 'तुलसीदास' कविता में भक्ति का उल्लेख नहीं है। सारा जोर योग और वेदान्त पर है। परन्तु 'राम की शक्तिपूजा' में भक्ति अपनी पूरी शक्ति के साथ उपस्थित है। यह तथ्य 'राम की शक्तिपूजा' को 'रामचरितमानस' और तुलसीदास से जोड़ता है, साथ ही अब तक निराला ने 'रामचरितमानस' और 'तुलसीदास' की जो व्याख्या की थी, उससे उसे अलग करता है। 'रामचरितमानस' में भक्ति के प्रतीक हनुमान हैं। 'तुलसीदास' कविता में हनुमान कहीं आसपास नहीं हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में वह कविता पर छाए हुए हैं। वह इतने शक्तिशाली हैं कि 'राम की शक्तिपूजा' भी उनके आगे अनावश्यक और फीकी मालूम होती है। अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर (उपर्युक्त, पृष्ठ 313) कहकर निराला ने भक्ति की इस नई शक्ति को अपराजेय बताया है।

कर्म का कीर्तन

डॉ. शोभाकान्त झा

वर्षों शहर के धूल-धुआँ का जहर पीने के बाद गाँव की खुली हवा और खुले आसमान के नीचे जाने का मौका मिला। मन महुआ उठा। अहसास महक उठा। संग-साथ गमक उठा। पिकनिक की तरह पुलकित बतरस की लालच और सांध्य पवन की लुत्फ लेने सबके संग-साथ निकल पड़े। कुछ लोग देर तक फोकटाहा राजनीतिक बहस-बकवास में लग गए तो कुछ अन्तरंग क्षणों की मीठी-मीठी बतियों में मगन हो गए। समय कैसे मुट्ठी से खिसकती रेत की तरह खिसक गया और साँझ गाढ़ी हो गई पता हीं नहीं चल पाया। पता तब चला जब बलचनमा बोला—चल मोहन! आज मंगलवार है। हनुमान जी के मन्दिर में कीर्तन है। चलों चलें। लोग गाँव की ओर मुड़ और मेरा मन चिन्तन की ओर। कीर्तन विषयक चिन्तन चलने लगा। कीर्तन विषयक क्या, क्यों, कैसे, किसके आदि-आदि प्रश्न घेरने लगे। वस्तुतः कर्म का गान कीर्तन है। विशिष्ट कर्मों से उत्पन्न व्यक्ति के गुणों का गान। कीर्तनीय कीर्ति का भजन। कर्म जो शील, चरित, कीर्ति का स्थायी आधार है, वह तीन रूपों में घटित होता दिखाई देता है—कर्म, अकर्म और विकर्म—

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकाः।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः।। —भागवत् 11-03-43

ऋजु-कुटिल गहन गति वाले कर्म की आस्था-व्याख्या बड़ा मुश्किल कार्य है, फिर भी शास्त्र और लोक व्यवहार सम्मत आचरण कर्म या कर्तव्य कर्म कहा जाता है, असम्मत कृत्य विकर्म और अपकर्म या निन्दनीय कार्य अकर्म कहा जाता सीधे जुड़े फलासक्ति युक्त होते हैं। दूसरा फलासक्ति रहित परमार्थ कार्य। फलासक्ति से जुड़े स्वार्थ कर्म कीर्तन के लिए अर्थवान नहीं होते। श्रीराम का भी सीमा मुक्ति कर्म यदि केवल सीता प्राप्ति से प्रेरित होता तो रावण का वध नहीं, हत्या माना जाता और युद्ध

डॉ. शोभाकान्त झा : सन्तोषी चौक, कुशालपुर, रायपुर-492001 (छत्तीसगढ़)

विजय सब की विजय या न्याय की जीत नही मानी जाती। देवता उन पर फूल नहीं बरसाते। लोग उनकी पद पूजा नहीं करते। स्वार्थ से सधा कर्म सुखद हो सकता, परन्तु सब का हित साधक नहीं। ऐसे कर्म चरित को, शील को ऊँचाई नहीं दे पाते, फलतः उनका गान नहीं किया जाता, वे उदाहरण के योग्य नहीं होते। गान तो सेवा, परोपकार, दया-दान जैसे कीर्तनीय कर्मों का किया जाता है, जो परहित प्रेरित होते हैं। समष्टि हित जिनका लक्ष्य होता है, जो कर्म फलासक्ति से रहित और यज्ञ भाव से किए जाते हैं, वे कीर्तनीय होते हैं। उनके कर्तव्य का अभिमान नहीं होता, कृतकृत्यता का अहसास होता है। ऐसे महतकर्म मनुष्य को महान बनाते हैं और समाज ऐसे कर्मनिष्ठ महापुरुषों के कृत्यों की चर्चा चौराहों, चौपालों और मन्दिरों में करने लग जाता है।

वस्तुतः भजन व्यक्ति का नहीं, उसके सुकर्मों का होता है। जब वह व्यक्तिपरक होता है, तो वह विरूदावली कहलाता है। वह तो क्रिया से अर्जित कीर्ति का श्रद्धानुमा गायन है, भक्ति है। छत्तीसगढ़ में एक भजन प्रचलित है 'जसगीत', अर्थात् दुर्गा माता के यशों का गायन। इसे 'मातागीत' भी कहते हैं। यह अभिधा ही बताती है कि यह दुर्गा का नहीं, अपितु उनके यशों का गायन है—उनके मातृत्त्व का बखान है। दुर्गा माता ने पुत्रों की रक्षा एवं सर्वमंगल की साधना के लिए जो कष्ट उठाया, दुर्गति दूर की, सबकी आर्ति हरण की, दुर्दान्त दानवों का दलन करके भव भय हरण किया, उन्हीं सारे चरितों का भजन 'जसगीत' है।

पवनपूत हनुमान के तो सारे काज राम के लिए होते थे—तुलसी के सारे नाते की तरह—राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम। राम का काज अर्थात् जग मंगल का काज। प्रजा रूपी सीता की भयमुक्ति और रक्षा का कार्य। इसीलिए हनुमान की जय की जाती है। उनकी कीर्ति का गायन करते हुए जाम्बवान श्रीराम से कहते हैं—

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाई सो बरनी।।—सुन्दर काण्ड

जाम्बवंत तो जाम्बवंत, राम भी हनुमान के कर्म का कीर्तन करते हुए कहते हैं—सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। व्यक्तिगत उपकार की बात होती तो राम हनुमान के ऋण का चुकारा भी कई तरह से कदाचित कर देते, परन्तु यह लोकहित प्रेरित कर्म का ऋण था। सीता प्रजा स्वरूपा थी। प्रजा की रक्षा करना प्रजापति या अवतार का कर्तव्य था।

अब श्रीराम को ही देखें। चारों भाइयों के बीच उन्हें ही पूर्ण भगवत्ता क्यों मिली? स्पष्ट है कि श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन जग मंगल विधायक कर्मों का आलेख है। आर्तत्राण के लिए ही उन्होंने शस्त्र धारण किया था और धर्म-मर्यादा की रक्षा के लिए शास्त्र (क्षत्रियैः धार्यते शस्त्रं नार्त्र शब्दों भवेदिति, रामो विग्रहवान् धर्मः) उन्होंने

लोकाराधन के लिए अपने जीवल को होम कर दिया। यहीं श्रीकृष्ण के साथ घटा। बचपन से ही लोक कल्याण के लिए जोखिमों से खेलना उनकी नियति बन गई। फलासक्ति से दूर रहकर वे लोकाराधन की लीला करते रहे। इसीलिए इन देवों की लीला का कीर्तन किया जाता है। उपास्य बनने के लिए व्यक्ति को कर्म की उपासना करनी पड़ती है। जीवन को यज्ञ बनाना पड़ता है। (यज्ञ कर्म समुद्भवः)

कीर्तन क्यों? क्या कीर्तन या स्तुति नवनीत लेपन है? हित साधने के लिए चाटुकारिता है? बैठे-ठाले का समय काटू और कान चाटू बकवास हैं? नहीं, ऐसा नहीं है। कोई कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता। कीर्तन के भी अनेक प्रयोजन और आनुषंनिक फलश्रुति है। देवचरितों एवं महापुरुषों की कीर्ति गाथा गाने से व पुण्य स्मरण से सद्यः लाभ तो यह है कि व्यक्ति को शान्ति मिलती है। वह तनाव मुक्त हो जाता है। भजनानन्द से रोम-रोम पुलकित हो उठता है। श्रद्धा विश्वास जागते हैं। निराशा का अंधकार छँट जाता है। मनुष्य सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होता है। अवतारों व महापुरुषों की जयन्ती मनाकर उनकी कीर्ति गाथा गाकर हम अपने भीतर अच्छे गुणों व संस्कारों का आधान करते हैं। शुभ कर्मों का द्वार खोलते हैं। व्यर्थ के कर्मों से बचते हैं। अधिक क्या कहना, जरा कीर्तन करके देखिए, देह-गेह-नेह सभी विभोर हो उठेंगे।

यह बैठे-ठाले का समय काटू कर्म नहीं अपितु समय को साधने का धर्म है। जीवन को धन्यता से भर देने का धर्म। सही कीर्तनिया बैठे-ठाले रह नहीं सकता। उसका हर पल कर्ममय होता है। पूजामय होता है। कीर्तन का यह आशय कभी नहीं रहा है कि अपने नित्य नैमित्तिक जीवन यापन के कर्म को छोड़कर धुनी रमाये रहना। निष्क्रिय होकर राम भरोसे बैठे रहना। जैसे अहिंसा कायरता नहीं सिखाती वैसे कीर्तन कर्महीनता का पाठ कभी नहीं सिखाता। यह तो कीर्तनीय के अनुसरण की सीख देता है। पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाता। हम राम-कृष्ण जैसे देवों के गुण इसीलिए गाते हैं कि उनके दिव्य गुणों से हमारा जीवन कमोवेश प्रभावित हो। हमारा आचरण सुधरे और हम उनकी कृपा के पात्र बनें–

रामेति कीर्तन राजन् सर्वरोग विनाशनम्।
प्रायश्चितं सर्व पापानां मुक्तिदं सर्वदेहिनाम्।।

एक प्रश्न और इस सन्दर्भ में विचारणीय है कि हम कीर्तन किसका करें और कैसे करें? कीर्तन देव चरित का किया जाता है, दिव्य का किया जाता है, कर्म से महान् का किया जाता है, गुणों का किया जाता है, जिनके चरित गुणगान से व्यक्ति और लोक चरित्र का निर्माण होता है, ऊपर उठने का उत्साह बढ़ता है, उनका किया जाता है। भाव-कुभाव अलख-आलस्य से जैसे-तैसे जिनका नाम लेने से दसों दिशाओं में मंगल घटित होता है, उनका किया जाता है।

भाव कुभाव अलख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिस दसहूँ।।

इसके विपरीत महज स्वार्थवश किसी की विरूदावली गाते रहना कीर्तन नहीं, चाटुकारिता है। भजन नहीं, वाणी वरदान का दुरुपयोग है। किसी क्षयग्रस्त चरित्र वाले चौधरी चौहान की स्तुति करते रहना अपनी ही क्षुद्रता का अपलाप है, कीर्तन जैसा पावन कर्म नहीं। इसलिए तुलसी कहते हैं–

किन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धरि गिरा लगी पछिताना।।

कबीर भी जगत-भाव के गायन को अस्वीकार करते हैं।

रही बात कीर्तन कैसे करें, तो इसके लिए तो भागवत-पुराण, सन्त महात्माओं के हजारों कथन आख्यान और उपदेश-निदेश है। असली बात तो यह है कीर्तन की जो शैली भा जाए, जिससे स्वयं के भीतर बैठा सांवरिया रीझ जाए, जिसे ऊपर वाला सुन ले और आसपास का वातावरण पावन बन जाए, वही असली शैली है। यह तन तम्बूरा है। इससे छत्तीसों राग निकलने चाहिए–उसी से जुड़ा, उसी के लिए। सत्तनाम की सत्ता में समा जाने के लिए 'दुचिताई' को मिटा देने के लिए–

पियत पियाला भये मतवाला
पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा
तर गई गनिका सदन कसाई।–कबीर

नाम रटते-रटते राधा माधव और माधव राधा बन जाते हैं। बूँद समुद्र में समा जाती है। समुद्र जाती है। सारी भव–बाधा मिट जाती है। इसीलिए भावगत कलियुग के पास-ताप शमन के लिए, केशव कीर्तन को (कलौ केशव कीर्तनात्), गुरुनानक देव सबद कीर्तन को, मुल्ला जी अजान, ईसा प्रार्थना, तुलसीदास नाम सुमिरन को जरूरी मानते हैं–

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।।
राम सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

भीष्म प्रतिज्ञा और द्रोपदी का चीर-हरण

प्रसून चौधरी

कुरु वंश[1] में महाराज शान्तनु उत्पन्न हुए, इस कुल के सम्बन्ध में विख्यात था कि ''जैसे सत्य से पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं वैसे ही यह विख्यात राजकुल सत्य में प्रतिष्ठित था।''[2] इस राजकुल में कोई भी शील-रहित नहीं हुआ था। महाराज शान्तनु का यशस्विनी गंगा से आठवाँ पुत्र 'गंगादत्त' हुआ, जिनका नाम 'देवव्रत' रखा गया। गंगा देवी का महाराज शान्तनु को छोड़कर जाने के बाद उनकी मुलाकात निषादराज की पुत्री रूपवती सत्यवती से हुआ। निषादराज इस शर्त पर अपनी पुत्री का विवाह महाराज शान्तनु से करने के लिए तैयार हुए कि उनकी पुत्री के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, महाराज शान्तनु के बाद उसी का राजा के पद पर अभिषेक किया जाए, अन्य किसी राजकुमार का नहीं।[3] इस शर्त की वजह से महाराज शान्तनु दुःखी होकर शोक और चिन्ता में डूबे रहने लगे।[4] राजकुमार देवव्रत ने जब अपने पिता महाराज शान्तनु के बारे में जाना तो वे निषादराज से मिले और उसे प्रतिज्ञापूर्वक[5] कहा; 'इस सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वहीं हमारा राजा बनेगा।'[6] इस पर निषादराज ने संशय व्यक्त किया; 'परन्तु आपका जो पुत्र होगा, वह शायद इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रहे'[7], इस पर पिता का प्रिय करने के लिए राजकुमार देवव्रत ने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत[8] की प्रतिज्ञा की; देवताओं, ऋषिगण ने देवव्रत को, भयंकर प्रतिज्ञा करने वाले—'भीष्म'[9]; नाम दिया।

महाराज शान्तनु और सत्यवती के पुत्र विचित्रवीर्य की मृत्यु बिना पुत्र उत्पन्न किए ही हो गई। तब माता सत्यवती के धर्मानुसार[10] अनुरोध पर महर्षि व्यास ने विचित्रवीर्य की रानियों अम्बिका और अम्बालिका से धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किए। धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन, पाण्डु-पुत्र; पाण्डवों से वैर भाव रखते थे। दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि से मन्त्रणा करके पाण्डवों की लक्ष्मी और राज्य

प्रसून चौधरी, मकान नं.-039-042, रंगभूमि मैदान के उत्तर गली नं.-1, प्रोफेसर कॉलोनी, पूणियाँ-854301 (बिहार)

हरण करने के उद्देश्य से द्यूतक्रीडा की परम्परा की दुहाई देकर महाराज धृतराष्ट्र को पाण्डवों को द्युतक्रीड़ा के लिए निमन्त्रण देने के लिए दबाव डाला। धृतराष्ट्र ने यद्यपि द्यूत को अनर्थ-पूर्ण[11] और धर्मानुकूल नहीं होने[12] की बात कहीं।

पाण्डवों के अग्रज युधिष्ठिर धन, राज्य, भाइयों तथा अपने सहित द्रोपदी को जुए में हार गए।[13] तब द्रोपदी को दुर्योधन के आदेश से दुःशासन द्यूतक्रीड़ा भवन में दासी की तरह घसीटकर लाया।[14] दुःशासन ने द्रोपदी से कहा—''तू रजस्वला, एक वस्त्रा अथवा नंगी ही क्यों न हो, हमने तुम्हें जुए में जीता है, अतः तू हमारी दासी हो चुकी है... ।''[15]

दुःशासन के ऐसे व्यवहार पर द्रोपदी ने राजसभा को लक्षित करके कहा—''भरतवंश के नरेशों का धर्म निश्चय ही नष्ट हो गया है तथा सदाचार लुप्त हो गया है...''[16] जान पड़ता है द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र में अब कोई शक्ति नहीं रह गई है...तभी तो वे इस पापाचार की ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं।[17] द्रोपदी ने आगे कहा—''वे वृद्ध नहीं है जो धर्म (न्याय और सदाचरण) की बात न बतावें, वह धर्म नहीं है जिसमें सत्य नहीं हो और वह सत्य नहीं है जो छल से युक्त हो।''[22] द्रोपदी ने सभासदों से प्रश्न किया—क्या मैं धर्म के अनुसार जीती गई हूँ?[18] इस पर भीष्म ने सन्देहास्पद उत्तर दिया—सौभाग्यशालिनी बहू! धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन नहीं कर सकता। जो स्वामी नहीं है वह पराये धन को दाँव पर नहीं लगा सकता, परन्तु स्त्री को सदा अपने स्वामी के अधीन देखा जाता है...''[19] भीष्म ने आगे कहा—''मेरा विश्वास है धर्मराज युधिष्ठिर धन-समृद्धि से भरी हुई पृथ्वी को त्याग सकते हैं, किन्तु धर्म को नहीं छोड़ सकते... ।''[20]

महात्मा विदुर ने पूर्व में ही कह दिया था—''द्रोपदी कभी दासी नहीं हो सकती, क्योंकि राजा युधिष्ठिर जब पहले ही अपने को हारकर द्रोपदी को दाव पर लगाने का अधिकार खो चुके थे।''[21] राजनीति के लौकिक व परम्परावादी विचारों का सम्यक् विवेचन हमेशा उच्चतर धर्म मर्यादा के मानकों से ही करना होगा जिसकी दुहाई द्रोपदी ने दी थी।

महात्मा विदुर ने द्यूतक्रीड़ा के षड्यन्त्र किए जाने के समय धृतराष्ट्र को चेतावनी दी थी तथा संशयों का निवारण करने वाले धर्मयुक्त तर्कों का प्रतिपादन किया था। उन्होंने बताया—''जुआ खेलना इस समय भयानक वैर की सृष्टि कर रहा है'',[23] यह करुकुल की मर्यादा को 'घोर संकट'[24] में डाल देगा। उन्होंने धृतराष्ट्र को शकुनी की ओर इशारा करते हुए बताया था—''जो अपनी दृष्टि को अवहेलना करते हुए दूसरों के चित्त के अनुसार चलता है, वह समुद्र में मुर्ख नाविक दारा चलाई जाती हुई नाव पर बैठे मनुष्य के समान घोर विपत्ति में फँस जाता है।''[25]

द्रोपदी के चीर-हरण के समय जब भीम को भीषण क्रोध आया तो अर्जुन ने उन्हें 'गौरव बुद्धि'[26] और 'क्षत्रियव्रत'[27] की दुहाई दी, लेकिन द्रोपदी की दुर्दशा[28] को किनारे कर दिया। धृतराष्ट्रनन्दन विकर्ण ने कहा—राजाओं के चार दुर्व्यसन बताए गए है—'शिकार, मदिरापान, जुआ और विषयभोग में अत्यन्त आसक्ति'[29] 'इन दुर्व्यसनों में आसक्त मनुष्य धर्म की अवहेलना करके मनमाना बर्ताव करने लगता है...'[30] जब दुःशासन भरी सभा में द्रोपदी का चीर-हरण करने लगा, द्रोपदी के श्रीकृष्ण के लिए आर्त्त पुकार से[31] वस्त्र की असंख्य शृंखला प्रकट होने लगी।[32]

विदुर जी ने सभा में प्रह्लाद-कश्यप संवाद[33] का सन्दर्भ देकर बताया—''सभा में जो अधर्म होता है, उसका आधा भाग स्वयं सभापति ले लेता है, एक चौथाई भाग करने वालों को मिलता है और एक चतुर्थांश उन सभासदों को प्राप्त होता है, जो निन्दनीय पुरुष की निन्दा नहीं करते।''

यद्यपि भीष्म-पितामह महान आत्मज्ञानी एवं श्रेष्ठ कुरुकुल शिरोमणि थे, उन्होंने श्रीकृष्ण के अग्रपूजा का शिशुपाल आदि के द्वारा विरोध किए जाने पर युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण के परमात्म स्वरूप, नारायण-तत्व (तत्त्व-ज्ञान) तथा अवतार का विस्तार से वर्णन किया था[34] तथा शिशुपाल सहित विरोधी राजाओं से युद्ध के लिए तत्पर थे,[35] उन्होंने सत्यवती को विचित्रवीर्य के मृत्यु के पश्चात् अम्बा तथा अम्बालिका से विवाह कर वंश चलाने के अनुरोध पर कहा था—''धर्मराज धर्म की उपेक्षा कर दें, परन्तु मैं किसी प्रकार सत्य को छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता।''[36]

महात्मा भीष्म ने राजधर्म की श्रेष्ठता[37] का वर्णन करते हुए मनुप्रोक्त दस धर्म जिसमें 'मन का निग्रह, इन्द्रिय का निग्रह, सात्विक बुद्धि'[38] आदि 'धर्माचरण',[39] करना बताया है, उसका सेवन करने वाले क्षत्रिय का मानव मात्र की रक्षा करना कर्तव्य है।[40] 'जो धर्म प्रत्यक्ष है..., आत्मा के साक्षीत्व से युक्त है, छलरहित है, सर्वलोकहितकारी है, वह धर्म क्षत्रियों में प्रतिष्ठित है'[41] शान्तिपर्व में उद्धृत इन्द्र-मानधाता संवाद में बताया गया है, 'प्रजा की रक्षा करना, विवादग्रस्त एवं पीड़ित मनुष्यों को दुःख और कष्ट से छुड़ाना-ये सब बातें राजा के क्षात्र-धर्म में ही विद्यमान है।'[42] ईर्ष्यारहित होकर स्त्री की रक्षा करना'[43] उसमें सम्मिलित है। जुआरी[44] आदि को दण्डनीय मनुष्य के श्रेणी में रखा गया है।

'सत्य'[45] का गूढ़ अर्थ है वह अस्तित्ववान सत्ता जो अविनाशी व चेतन है उसी से जगत और जीव, आकाश व पृथ्वी की सत्ता प्रतिभाषित है। ऋत व सत्य[46] अर्थात् वे शाश्वत् नियम जिससे काल, जगत, व आकाश स्थिर है। सत्य के अन्वेषण में जीवन-यापन करना ही सत्य-चिन्तन व सत्य का पूजन है। गीता में श्री कृष्ण बताते हैं— मेरा मर्म अर्थात् तत्त्व-ज्ञान[47] यह है कि सम्पूर्ण जीव-जगत मेरी परा-प्रकृति से धारण48 किया गया हुआ है—यह सब जो दृष्टिगोचर है ईश्वर के सत्य-संकल्प के

अधीन है। अतः सत्य में अवस्थित होने का अर्थ है सत्य-निष्ठा अर्थात् सत्य का आचरण-वही धर्म है, न्याय है।

आचारमूला जातिः, स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
सत्य व धर्म का मूल ही सदाचारण है।।

युधिष्ठिर-भीष्म संवाद में स्वयं भीष्म ने बताया था 'लोभ और मोह से घिरे हुए तथा राग-द्वेष के वशीभूत हुए मनुष्य की बुद्धि धर्म में नहीं लगती अधर्म को दया से और धर्म को विचारपूर्वक पालन करने और अभिमान को करुणा द्वारा जीते।'[49]

इसमें कोई शक नहीं कि महारथी भीष्म को क्षत्रिय परम्परा अधिक महत्त्वपूर्ण लगी, वे 'सत्य' के मूल-तत्त्व जिस पर धर्म, शील और आचरण आधारित है। उसकी सम्यक व्याख्या-द्रोपदी के चीर-हरण के समय शिरोधार्य नहीं कर सके।

युधिष्ठिर का धर्म और भीष्म पितामह का सत्य, सत्य का यथोचित अन्वेषण करते नहीं दिख पड़ते हैं। सत्य तो वहीं एक परमात्मा का अपनी महिमा में अविस्थिति है, जिससे मानवता सत्य व ज्ञान का आवेष्ठन प्राप्त करता है जो सबके हित का अधिष्ठान है। लोक-जगत में सबों के लिए करुणा ही सत्य का मूल है। मनुष्य के सदाचरण का आधार वहीं है।

द्रोपदी के वस्त्र-हरण के समय मौन रह जाने के सम्बन्ध में पितामह भीष्म ने बताया कि वह 'प्रमाद' दुर्योधन के अन्न दोष से उनमें आया।' शुभाशुभ कर्मो का परिणाम कर्त्ता को अवश्य भोगता पड़ता है।[50] श्री कृष्ण ने द्रोपदी से भविष्य-कथन किया था, 'भाविनी! तुम जिस पर क्रुद्ध हुई हो...वो...अर्जुन के वाणों से छिन्न-भिन्न और खून से लथ-पथ हो...मृत्यु को प्राप्त होंगे...।'[51] पीड़ित द्रोपदी के लिए सत्य-प्रतिष्ठित समझे जाने वाले सिर झुके रह गए। सत्य और न्याय प्रतिष्ठित नहीं हो सका। यह गौरव गाथा नहीं है।

संदर्भ

1. आदिपर्व अन्तर्गत सम्भवपर्व, 95 वाँ अध्याय, श्लोक-44।
2. वही; श. 25, 26।
3. वही, 100वाँ अध्याय, श. 56।
4. वही, श. 60।
5. वही, श. 86।
6. वही, श. 87।
7. वही, श. 92।
8. वही, श. 96।
9. वही, श. 98।

10. 104वाँ अध्याय, श.35-381/2 तथा 39-41।
11. सभापर्व अन्तर्गत धुतपर्व, 56वाँ अध्याय, श. 12।
12. वही, श. 15।
13. 65वाँ अध्याय।
14. 67वाँ अध्याय।
15. वही श. 34।
16. 67वाँ अध्याय, श. 40
17. वही-श.41
18. वही-श. 42
19. वही-श. 47
20. वही-श. 48
21. 66वाँ अध्याय-श. 4
23. 63वाँ अध्याय-श.1,
24. वही-श.2
25. वही-श-4
26. 68वाँ अध्याय-श.7
27. वही-श.9
28. वही-श.6
29. वही-श.20
30. वही-श.21
31. वही-श. 43-46
32. वही-श.47
33. शान्तिपर्व-72-86
34. सभापर्व अन्तर्गत अर्धाभिहरणपर्व 36वाँ, 37वाँ, 38वाँ अध्याय
35. 44वाँ अध्याय
36. आदिपर्व अन्तर्गत संभवपर्व 103वाँ अध्याय-श्लोक 15 और 18
37. शान्तिपर्व; राजधर्मानुशासनपर्व, अध्याय श. 63; 38, वही-श.13,
38. वही-श.16,
40. वही-श.24,
41. वही-अध्याय 64, श.5,
42. वही-श.27,43,
43. वही-अध्याय 70, श.8
44. वही-अध्याय 69, श.26 तथा शुक्राचार्य कथित श्लोक नं.-74
45. श्रीमद्भागवत् के दसवें स्कन्ध में देवताओं के दारा भगवान् वासुदेव के गर्भ-प्रवेश पर स्तुति किया गया;'...सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं, सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये। सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं 'सत्यात्मक त्वां शरणं प्रपन्नाः।'[26]।

अर्थात् प्रभो! आप सत्यसंकल्प हैं, सत्य ओ आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूर्व, प्रलय के पश्चात् और संसार की स्थिति के समय-इन असत्य अवस्थाओं में भी आप 'सत्य' हैं।

46. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्य जायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।...दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।1-3।। ऋत-सूक्त 10।190। ऋग्वेद।
47. ...कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः। भगवत्गीता, 7.3.
48. ...जीवभूतांमहाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। वही 5।
49. शान्तिपर्व अन्तर्गत मोक्षधर्म पर्व, 273 तथा 274वाँ अध्याय।
50. शान्तिपर्व, मोक्षधर्मपर्व, अध्याय-121
51. वनपर्व के अन्तर्गत अर्जुनाभिगमनपर्व; अध्याय 12, 128-132.

समकालीन हिन्दी कहानी का समाज

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

भारत में अधिकांश लोग गाँवों में रहते हैं। कभी गाँव सरलता, शुचिता और संस्कृति का गढ़ माना जाता था। पर आज यह धारणा मिटती जा रही है। कारण है, गाँव खण्डित हो रहे हैं। उन पर आसपास के नगरों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। गाँव से निकलकर रोजी-रोटी की खोज में जो शहर गए हैं, उनकी हालत दयनीय हो गई है। श्यामलाल का अकेलापन (संजय कुन्दन) इस कल का गवाह है कि जब वह इंसानों के उस जंगल में पहुँचता है, जिसे वह आदेश मानता रहा, तो उसका स्वप्न भंग हो जाता है। उसे विश्वास नहीं होता कि महानगरीय विद्रूपताएँ इंसान को इतना खोखला बना देती हैं कि वह थोड़ा-सा पाने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है। गाँव का सबसे जवान गोपी बाउंसर की बेहद अनजान नौकरी करने लगता है। वह कभी यदि बाउंसर से इंसान की ओर लौटने का प्रयास करता है, तो उसे पीछे धकेल दिया जाता है कि वह जरा भी इंसान नहीं है, बल्कि महज वेतन पाने वाला एक बाउंसर है। जिसके पास रिश्ते संवेदना या अपनी इच्छा का कोई स्थान नहीं है।

इसकी शीर्षनामा कहानी 'श्यामलाल का अकेलापन' में श्यामलाल को लगने लगता है कि वर्षों से नौकरी करने के बाद भी वह यहाँ के अनूकूल नहीं है। वह समाज और अपने सहकर्मियों के बीच गैर-प्रासंगिक और मिसफिट बनता जा रहा है। पंकज चतुर्वेदी इसकी समीक्षा में बताते हैं : ''उसकी चिन्ता है कि अब यहाँ की संस्कृति इंसान को ही एक उपभोग की वस्तु बना रही है सुख-दुःख, रागद्वेष, सहजता से बहुत दूर।'' इंसान रोबोट की तरह एक मशीन बनता जा रहा है। (समकालीन भारतीय साहित्य जनवरी-फरवरी 2016, पृ.188)।

डॉ. दिनेश चमोला शैलेश 'गिरिजा दा' में बताते हैं कि बेटी बचाने की प्रथा आज तक किसी-न-किसी रूप में जीवित है। भुवनी के रिश्ते में 'ददा' कुछ पैसे कमाना

वृन्दावन, राजेन्द्र पथ, धनबाद-826001 (झारखण्ड) मो. 8296875286

चाहते थे यानी सौदा करना चाहते थे। उनका मन था कि उस पैसे से बकरियों के कुछ गोठ में ही वृद्धि हो जाए परन्तु बड़ी चतुराई और विनम्रता से प्रस्ताव देते हैं :

''हम लड़की को बेचनेवाले तो नहीं हैं, लेकिन आज के जमाने में कम-से कम भोज-भात (दावत) की सामग्री की मदद ही सही... ।'' और वह दो हजार रुपये लेकर हामी भर देते हैं। (अपरिवत् पृ.57)

घूसखोरी, भ्रष्टाचार, दो नम्बरी काम का ऐसा बोलबाला है कि असली काम करने वाला पिट जाए, तो कोई परवाह नहीं, पर दो नम्बरी, घूस, पैरवी वाले कभी हारते नहीं। नतीजा यह है कि शहनाई वाले पण्डित मेवाराम आकाशवाणी के निदेशक अपने ही भांजे को एक लाख की घूस देकर प्रथम कोटि के शहनाई वादक बन जाते हैं। घूस के प्रस्तावक पर ध्यान जाना जरूरी है। पहली किस्त में पचास हजार रुपए, शेष सफलता मिलने पर चुकाने की शर्त है। पूरे एक लाख लेने के तिकड़म का नजारा देखा जाए : ''कंसर्ट में शहनाई में एक ही फूँक मारोगे तो कलई खुल जाएगी कि कितने बड़े कलाकार हो। अरे यह तो जीवन-भर आकाशवाणी से टॉप ग्रेड कलाकार के रूप में जुड़े रहोगे, फीस वसूलते रहोगे।'' (शहनाई वाले पण्डित मेवाराम : नीरजा, माधव, स.भा.सा.ज.—अगस्त 2016, पृ. 141)।

मीडाज टच वाली हैट्रिक : अरुणेन्द्र नाथ वर्मा में भी घूस के निरन्तर लेन-देन की प्रथा बलवती होकर उजागर हो गई है। इंस्पेक्टर यादव एस.एच.ओ. (थानाध्यक्ष) को लाखों की घूस वसूलकर देता है और वाहवाही लूटता है। उसकी चमत्कारी प्रकृति और परिणति पर चौंकाने वाला बयान सब स्पष्ट कर देता है।

''दो महीनों में एक ही पार्टी की आँत के अन्दर हाथ घुसाकर एक-के-बाद एक पन्द्रह-पन्द्रह लाख करके तीस लाख वसूल लेना, उसमें से आधे रुपए सी.ई.ओ. साहब और ऊपर के लिए चुपचाप पहुँचा देना शेष पन्द्रह में से पाँच अपने प्यादों और फर्जियों के लिए अलग कर देना और खुद केवल दस लाख रखना।'' (पृ.49)।

सच यह है कि आज की कहानी समकालीन सच से सीधे आँख मिला रही है। वह उपभोक्ता संस्कृति में बाजारवाद का संकट हो या फिर आतंकवाद, साम्प्रदायिकता की समस्या, स्त्री चेतना पर केन्द्रित विमर्श जातिवाद के विष से व्याप्त सामाजिक घुटन, पीड़ा या फिर वृद्धाओं की समस्या। रमेश उपाध्याय की लम्बी कहानियों का संकलन है—'त्रासदी...माई फुट' (शब्द सन्धान, दिल्ली)। यह भोपाल गैस-काण्ड पर आधारित है। यह एक तरह से भोपाल गैस काण्डोत्तर त्रासदी की पोल खोलती है। राजन और नूर का संवाद यह स्पष्ट करता है कि यह एक हादसा नहीं, बल्कि हत्याकाण्ड है। नूर इसे 'ब्लडी मै से केट' कहता है। नूर अब चाहते हैं कि उस महाविनाशक काण्ड से लोग सबक लें कि फिर ऐसा हत्याकाण्ड न हो सके :

''हमें उन जख्मों को तब तक कुरेदते रहना चाहिए, जब तक दुनिया में ऐसे हत्याकाण्ड बन्द नहीं हो जाते।'' कहानीकार का मानना है कि यह कोई प्राकृतिक

घटना नहीं है जिसके लिए किसी को उत्तरदायी ठहराया जा सके। इसी के विरुद्ध गुस्सा फूटता है—'त्रासदी माई फुट' में।

इसी की एक कहानी है 'प्राइवेट पब्लिक', जो बताती है कि वैज्ञानिक प्रगति के कारण नित नए-नए बदलाव आ रहे हैं। नई तकनीक से बदलते जा रहे दूरभाष से शहरों के बदलते स्वरूप का। मसलन, नई तकनीक पुराने कर्मचारियों को अनुपयोगी बना रही है और उनपर अपने अस्तित्व का संकट मँडरा रहा है।

कहानियाँ अपनी संवाद शैली में बताती हैं कि कैसे सत्ता, बाजार और मीडिया मिलकर एक ऐसा इंसान तैयार कर रहे हैं, जो सिर्फ उनकी इच्छाओं पर चलता है। बड़े कहानी का अन्त यह है कि सबको इस बदलाव (कम्प्यूटर इन्टरनेट का बढ़ता प्रभाव) को स्वीकारना होगा अन्यथा वह नेपथ्य में फेंक दिया जाएगा।

महेश दर्पण इसकी समीक्षा में बताते हैं : बड़े कलात्मक और खामोश अन्दाज में यह कंज्यूमर कल्चर के विस्तर में मास मीडिया की भूमिका और जीवन पर पड़ रहे विज्ञापन जगत के प्रभाव को सामने रखती है। कम्पनियों के फार्मूले-बेटर फास्ट और चीपर की परतें उधाड़ते हैं।'' (समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2014, पृ. 212)। यहाँ कथाकार की दृष्टि मजदूर को भी कंज्यूमर गिरफ्त में पाती है। वे लोग अब अपनी ऊर्जा को आन्दोलन में नहीं, चीज़ों को खरीदने और उनकी किस्त चुकाने में लगाने लगे हैं।

अब ये रास्ता नहीं है (मुरारी शर्मा) में भी बाजारवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जहाँ मैदान था, दस-बीस फुट के गड्ढे हो गए थे, गाय, भैंस का बसेरा था, वहाँ विशालकाय जे.सी.बी. मशीनें, ट्रैक्टर, टिप्पर आदि लगे हैं, जो रेतबजरी निकालकर लाखों कमाते हैं। माटी बिक रही है सोने में तो फिर कल की फिक्र किसे है। फसल बीज बुआई से लेकर कटाई तक के काम मशीनों से होने लगे हैं। सामूहिक श्रम की लय, ताल और लोकगीत भी कहाँ खो गए हैं। टूटते परिवारों ने दिलों की दूरियाँ बढ़ा दी हैं। (उपरिवत् पृ.-102 समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2014 पृ.102)।

नीलाक्षी सिंह (परिन्दे का इन्तजार-सा कुछ) की कहानियाँ समकाल के महत्त्वपूर्ण मसलों से सीधे टकराती हैं। वह उपभोक्ता संस्कृति में बाजारवाद की समस्या हो, साम्प्रदायिकता की समस्या हो, आतंकवाद की समस्या हो, या फिर समस्याएँ हो स्त्री-चेतना-विमर्श, वृद्धावस्था, जातीय समीकरण, जातिगत इतर पर युवा पीढ़ी के प्रेम की...इनकी प्रतियोगी कहानी में बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति पर सीधे निशाना साधा है। किस प्रकार देसी बाजार के देसी ढंग पुराने पड़ते गए। जलेबी, कचरी को नए युग के फास्ट फुड ने पछाड़ दिया। बमशंकर भण्डार और छक्कन प्रसाद एण्ड संस नामक मिठाई के दुकानों ने प्रतियोगिता के बल पर एक दूसरे को पछाड़ने का माद्दा अपना लिया। फलतः उनकी दूकानें गई। रोजी-रोटी की समस्या आ गई। छक्कन प्रसाद एण्ड संस, फास्टफुड-सेन्टर एक प्रतीक है, जिसके माध्यम से पूरे देश के गाँव,

कस्बों के वैश्वीकरण की आँधी में एक ग्लोबल गाँव के रूपान्तरण की पीड़ा दर्ज है। इन स्थितियों की मार्मिकता 'उस शहर में चार लोग रहते थे' में अभिव्यक्त हुई है। माल्थस के सन्दर्भ से इस कटु यथार्थ को उकेरने का प्रयास किया गया है :

''यह देश, यह समय भी तकनीकी क्रान्ति नाम की एक नई क्रान्ति से गुजर रहा था। मानव की कीमत दिन-ब-दिन निचले सूचकांक को छू रही थी और जनसंख्या भी एक स्थानीय देवता के डग के समान तीनों लोक नाप लेना चाहती थी।''

छोटे राजा की बड़ी प्रोडक्सन कम्पनी हाल में हुए युद्ध में वीरगति प्राप्त शहीद की स्मृति एक एलबम बनाकर कैश कर रही है। इसका मूल स्वर है 'जो लौटकर फिर न आए।' मनुष्य के आँसू भी किस प्रकार बाजार के लिए मूल्यवान बन जाते हैं।

'परिन्दे का इन्तजार-सा कुछ' (शीर्षनामा कहानी) में बावरी मस्जिद प्रकरण के सन्दर्भ में साम्प्रदायिक की समस्या की गहन पड़ताल हुई है। इसी प्रकार वृद्धावस्था की समस्या 'एक था बुझवन' में बड़े वैज्ञानिक ढंग से उठाई गई है। बुढ़ापे में स्मृति-क्षरण के कारण और उन्हें रोकने के उपाय पर विचार होता है। कहानी का अन्त बड़ा नाटकीय है। कथ्य को सूत्र रूप में व्यंजित करता है।

''बुझवन की आत्मा बदहवास भागी जा रही थी, गास महोदय के दरबार में यह दर्ज करने कि भारत के भावी बूढ़े अपना पिछला भूलकर ही सुखी रहेंगे। उन्हें गीस महोदय के स्मृतिपिल्स की कोई दरकार नहीं।''

इसी प्रकार 'फूल' कहानी जम्मू कश्मीर के आतंकवाद की स्थितियों पर केन्द्रित है, जिसमें भारतीय क्रिकेट टीम के उप कप्तान राठौर का अपहरण कर अपने चौबीस साथियों की रिहाई की शर्त आतंकवादियों ने रखी है। एक पत्नी को जीवन की सारी सुख सुविधाएँ मिल जाएँ, बेटे पोते से भरा घर हो परन्तु पति का प्रेम नहीं मिले, तो उसका जीवन शून्यता से भर जाता है। लगता है एकदम वीरान, उचाट। कहानी में नायिका का भोगा सत्य है—''जहाँ मेरे कीमत मादा से ज्यादा नहीं थी, जहाँ मैं सिर्फ़ जरूरत थी, चाह नहीं और पैतीस हजार वर्षों (पैंतीस वर्षों का दुर्वह भार पैंतीस हजार हो गया) तक मैं ऐसे ही चलती रही। भीतर धीरे-धीरे सुलगती खुद को राख होते देखती।''

(समकालीन भारतीय साहित्य मार्च अप्रैल 2014 'अब उठूँगी राख से : जया जादवानी पृ.-37)

एक जीवन वह था, जिसे अपने घिसटते हुए पार किया था। दूसरा वह था, जिसे वह अपने पैरों से चलकर पार करना चाहती थी। पति की मृत्यु से वह स्वतन्त्र हो गई थी। लगा था उसका भी कोई अपना वजूद है। वह फिर अपना निर्णय ले पाएगी। अपने 'स्व' के बल पर कुछ कर पाएगी।

पति से ऊब, नफरत वितृष्णा से वह भरी रहती है। परन्तु पति की मृत्यु पर उसे सत्य का बोध हो जाता है। वह एक निश्चित मुकाम तय कर लेती है कि वह इस

गलीज जिन्दगी से ऊपर उठेगी अपनी निजता में विचरण करेगी। शादी अपनी आत्मा का हनन है :

''पलंग पर बिछी वे सारी चीजें रखी थीं, जिन्हें मैंने थोड़ी देर पहले निकाला था और वे भी, जो मेरी नजर बचाकर मेरे भीतर से निकलकर बाहर आ गई थी। डर, कुण्ठा, नफरत, सेक्स, जंग, दुःस्वपनों का ढेर, और न जाने क्या-क्या (शादी कोई बुरा सौदा नहीं है, अगर हम अपने कम्बख्त आत्म) के दूर तक खदेड़ आए या गला दबाकर मार दें।'' (उपरिवत् पृ.-43)

उधर कलसी है, जिसने एक दरिद्र विजातीय कुरूप नवयुवक से प्यार किया था और लोगों के लाख समझाने पर भी उससे विवाह किया था। फिर एक दिन उसकी हत्या कर पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया था। पहले उसे उस युवक पर भरोसा था, उसके अखण्ड प्रेम में आस्था थी। बाद में उसे किसी औरत के साथ लीन देखकर वह अपने को रोक नहीं सकी, उसकी हत्या कर दी।

कलसी का यह सत्योद्‌गार सारे धुँध को साफ कर देता है। प्रेम पूर्ण समर्पण है या फिर पूर्ण विरक्ति, घृणा में हो जाती है उसकी परिणति।

''इसकी जिन्दगी को सँवारने के लिए भी कम जतन नहीं किए थे मैंने। सीना-पिरोना करके गृहस्थी की गाड़ी को लाइन पर लाने की कोशिश की...मैं नहीं चाहती थी कि कासिम इस मरी के जाल में फँसकर अपनी जिन्दगी बरबाद कर लें।''

(समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2015 में कलसीः हबीब कैफी पृ.-99)

आधा खुला दरवाजा (तरसेम गुजराल) में इस बात पर बल है कि लाख बाधाओं विपरीतताओं में भी व्याही पत्नी पति का कितना साथ देती है। जहाँ ज्यादा झगड़े हैं, वहाँ प्यार भी ज्यादा है। इसका नायक कभी दो-चार घण्टे साथ रहने वाली एक पत्रकार से प्रेम निवेदन कर चुका था पर वह संभव नहीं हुआ। आज उसी प्रेम की दुहाई देकर वह उस प्रसिद्ध सहानुभूति तक सिमट जाता है, कुछ हो नहीं पाता है। नायिका कमरे में चली गई, तो यह उधर ही ताकता रहा। थोड़ा दरवाजा खुला। उसकी दृष्टि तीर की तरह उस पर टिक गई। फलतः ''उसके गोरे जिस्म की झलक मिली और उसने दरवाजा पैर से उढ़का दिया। अब दरवाजा आधा खुला था।''

(समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005 पृ.-113)

भोगवाद, सेक्स की इच्छा कितनी उद्‌गम होती है कि एक माँ अपने सौतेले बेटे के साथ भोग करती है और उसे हर हाल में अपनी पत्नी से अलग रखने का षड्‌यन्त्र करती रहती है। वह आखिर एक दिन ससुराल से जुड़े भ्रमजाल से जल्दी ही बाहर निकल आई। उसको आत्मबोध हो गया :

जासूसी करती आँखें और कठपुतली की मानिन्द हिलते-डुलते पति जिनकी डोर उनकी माँ के हाथों रहती।'' (उपरिवत् में 'धुआँ और धुंध' रजनी गुप्त पृ.-119)

पति कैसी छद्म सफाई देता है कि होमफ्रण्ट पर माँ का ही चलता है। वह जो कहे, वही शिरोधार्य। फिर एक बार संयोग से पति उसके साथ कहीं बाहर गया उसकी नौकरी की जगह पर तो पता चल पाया कि उसका पति नपुंसक नहीं है भले ही वह अपनी सौतेली माँ की वासना की पूर्तिका माध्यम बना रहे। वह अन्त तक धुआँ और धुँध में ही जीने को विवश रही। उसे पहली बार सुखद अनुभूति हुई, जब उसके रोने से वह प्रभावित हुआ। ''थोड़ा-सा पिघला और हमारे बीच पहली बार पति-पत्नी के सम्बन्ध बने यानी ये नपुंसक नहीं हैं। फिर क्यों इतना दुराव'' (समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005 पृ.-121)

कहानियाँ लिखने के उद्देश्य अलग-अलग हैं। पहलू भी अलग-अलग। वे गगनचारी पक्षियों की तरह कभी उतरते हैं, तो कभी अपने जीवन के बीच से ही किसी आख्यान का स्रोत निकाल लेते हैं। तब पात्र अलग-अलग परिवेश के होते हैं। भाषा, मानसिकता अलग-अलग उनमें ऐश्वर्य का भाग है, तो अभाव की जानलेवा पीड़ा भी है। कमलेश्वर की कहानियाँ ऐसी ही हैं, जो उनके भोगे गए सत्य का अनावरण हैं, तो तत्कालीन समय के अन्तर्विरोध का बयान भी। उनकी रचनात्मकता तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन से अवश्य प्रभावित हुई। 'आजादी मुबारक' स्वातन्त्र्योत्तर भारत के बदलते समय और त्रासदियों को दर्शाती है। यहाँ पाठकों के सामने ढेर पात्र उभरते हैं, जो लगता है मजमेबाज हों। आते हैं रंगमंच पर, फिर चले जाते हैं। आजादी का जश्न और त्रासदी इसके दो सिरे हैं। यहाँ वेश्याएँ हैं। दलाल हैं, नेतागण हैं और हैं भड़वे मानो दोनों ध्रुव।

उदय प्रकाश (दिल्ली की दीवार) की कहानी इसी तरह के ताने-बाने से बुनी गई हैं। यहाँ वैसे पात्रों की अधिकता है, जिनमें स्मैकियों से लेकर ग्राहक को पटाने वाली सस्ती वेश्याओं तक का फैलाव है। यह कहानी उनके कहानी संग्रह दत्तात्रेय के दुःख की लम्बी और उबाऊ कहानी हैं। यहाँ एक ऐतिहासिक पार्क पर्णित हैं, तो वहीं भिखमंगों, पागलों, कोढ़ियों, लूले-लगड़ों नशाबाजों, लावारिश और अनागरिक मनुष्यों का विवरण भी है। वह जीवन्त पात्रों को अपनी तरह से रखते हैं और उनका औचित्य भी सिद्ध करते हैं। असदंजेदी मानते हैं कि कहानियों के रूप में वह कुटीर उद्योग चलाते हैं। 'आचार्य की रजाई' 'साइकिल' और 'हत्या' अच्छी कहानियाँ हैं, जिनसे जीवन का सकारात्मक सन्देश मिलता है। वहीं कमलेश्वर का मानना है कि सबको अपने धर्म, विश्वास, आस्था को बनाए रखना चाहिए, क्योंकि वह उनके संस्कारों से जुड़ा है।

''ईसाई हो तो ईसाई रहना, हिन्दू हो तो हिन्दू रहना। मुस्लिम हो तो मुस्लिम रहना धर्म बदलने से आदमी को पराई संस्कृति को झेलना पड़ता है जो हमें अलग-अलग टुकड़ों में बाँट देती है, फिर हमें चूसती है।'' (आजादी मुबारक : कमलेश्वर)

उनका मानना है कि साहित्य को गगनचारी और कल्पनालोक का विहग नहीं बनकर आम जनता की जमीन पर उतरना पड़ेगा :

''साहित्य शब्द-निर्मित द्वीपों में नहीं रह सकता। उसे सड़के और बाजार की पटरियों पर उतरकर आना पड़ेगा।'' (समकालीन भारतीय साहित्य, नवम्बर-दिसम्बर 2002, पृ.-129)

हिडिम्बा के गाँव (बटरोही) और दूसरा अलास्का (अनीता राकेश) में हमारी भावनाओं, द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता को अलग-अलग पात्रों की मनोदशा द्वारा व्यक्त किया गया है। अनीता राकेश की कहानियों में व्यक्ति के अकेलेपन का एहसास तीव्र हुआ है। साथ ही हमारे आसपास जो रुग्ण है, गलित है, अस्तव्यस्त है रूढ़िग्रस्त है, उसके प्रति नकार का भाव भी उभरा है। इससे अनीता की कहानियों में संक्रिलष्टता आई है, तो अहसास की तल्खी भी।

'हिडिम्बा के गाँव' में हमारे समाज के कई प्रश्न उभरते हैं। गाँव के वर्णन के साथ जंगल, पोखर, पहाड़, मन्दिर, गाय, बकरियों के चित्र उभरते हैं। साथ ही वहाँ की संस्कृति, परम्परा का भी बोध होता है। इसमें पहाड़ी क्षेत्र में सवर्ण-अवर्ण के मध्य सामाजिक सम्बन्धों का पता चलता है। यहाँ इतिहास है तो उसके साथ पहाड़ पर आकर बसने वाली जातियों का वर्णन भी। यहाँ सचमुच में पहाड़ी का अनकहा दर्द व्यक्त हुआ है और वहाँ बसने वाली जातियों का ब्योरा भी।

महिला-आरक्षण के कन्धे पर सवार होकर कैसी-कैसी जाहिल औरतें, तैंतीस परसेन्ट, आरक्षण का लाभ उठाकर सरकार और जनता का शोषण कर रही हैं, यह यहाँ ध्यातव्य है। महिलाओं का सेकेण्ड सेक्स और गरीब होने के कारण कितना शोषण होता है, वह भी यहाँ द्रष्टव्य है। गरीब घर की महिला दहेज के अभाव में दहेज से ब्याही जाती है और प्रारम्भ में ही उसकी नसबन्दी करा दी जाती है, ताकि उसका कोई वारिस सम्पत्ति का अधिकार न पा सके और न उस महिला का प्रेम पति के सिवा कहीं अन्यत्र विभाजित हो। यह प्रेम नहीं विवशता की परिणति है। कथानायिका नीरा सोचती है कि पैसा बड़ी चीज है। बेटी का क्या। वह होती है किस्मत का कर्ज चाहे जैसे उतरे। राम सिंहासन बाबू जब वह कर्ज, बिना दाम, कौड़ी के उतारने के लिए तैयार हैं, तो भला वह क्यों चूकते। पहली बार ससुराल पहुँचने पर जेठानी के चरण छुए थे, नीरा ने और उन्होंने आशीष दिया था :

''बबुआ के जाँघे खिया।'' उनकी जाँघ के नीचे रहना (आशय, अक्टूबर 2004-2005 में तैंतीस परसेन्ट : नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ 54) अब नीरा घिस ही तो रहीं है रामसिंहासन बाबू की जाँघों के बीच नीरा सोच रही है : ''जिन दिन से नीरा का ऑपरेशन हुआ है, नीरा औरत की बजाय एक खोह-भर होकर रह गई है, भयंकर काली भुतही खोह।...रामसिंहासन बाबू को डर नहीं लगता इस भुतही खोह से?... रामसिंहासन बाबू पिशाच हैं क्या?'' (उपरिवत् पृ.-54)

पार्टी कार्यालय में आकर मीरा को पहली बार यह एहसास हुआ है कि यहाँ न पति का भय है, न उनके जवान होते बेटों द्वारा पंकज की अम्मा कहलाने का। नीरा यह सब चाहती भी नहीं है। न वह किसी की अम्मा थी, न कभी बन सकती है। उसे अम्मा कहना कितना अपमानजनक लगता है, यह नीरा ही बता सकती है। परिस्थितियाँ कैसी भी हों, वह क्या सदा नारी उपेक्षा के लिए ही पैदा की जाती हैं? काश, यह प्रश्न रामसिंहासन बाबू और समाज से पूछा जाता। नीरा के साथ ऐसी कई पिछड़ी महिलाएँ हैं, जो राजनीतिक संरक्षण में यहाँ आकर हँसी का पात्र हो गई हैं, पर उनमें सुधार की नहीं यथास्थिति की ही अधिक संभावनाएँ हैं।

आज के भौतिक युग में रिश्ते भी धन पर आधारित हैं—टकसाल हैं। वहाँ केवल सिक्कों की खनखनाहट वाली भाषा सुनाई पड़ती है। इस हालत में सच्चा प्रेम, स्नेह दुर्लभ हो जाता है। भावनाएँ होती रहती है। उत्तरोत्तर उपेक्षित-फिर वहाँ न रिश्तों में कोई ऊष्मा रह जाती है, न कोई गरिमा। गुनहगार (लता अग्रवाल) का नायक बचपन में पिता से अकारण पिटता रहता है। बड़ी निर्ममता से वह इसकी खबर लेते रहते हैं। संभव है उन्हें प्रसाद की पंक्तियाँ याद हो—''महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में में पलता है।'' इस बेरहमी से पिट जाने की प्रतिक्रिया में बालक ने घर से पलायन कर बड़ा मुकाम हासिल किया और घर से दूर रहकर अपनी उपलब्धियों को घर तक पहुँचाता रहा। नाटक का पटाक्षेप आशातीत हुआ। कई वर्षों बाद उसका धनी बेटा उनके श्राद्ध में पहुँचा, तो लौटते हुए उसे पिता के पत्रों का एक पुलिन्दा मिला, जिसमें उन्होंने उसकी हर उपलब्धि पर शाबासी दी थी। यह पढ़कर नायक भले अपने को मानता हो, गुनहगार पर संभवतः यह उसका मृतक पिता के प्रति छद्म रवैया है। एक आदेश है। ''अब्बू नहीं गए, बल्कि मेरी ताकत मेरी चुनौती मेरी जंग सब कुछ एक बार में खत्म हो गया—जिन्दगी एक गुनाह की तरह सीने में दम घोंट रही है।''

(समावर्तन मार्च 2015, उज्जैन में लता शर्मा की कहानी :'गुनहगापर' पृ.-63)

निवृत्ति (शैलेन्द्र सागर) के कथारम्भ में ही कहानीकार समकालीन सच की नब्ज पर उँगली रख देता है : ''भोगवाद और उत्सवधर्मिता के इस दौर में हर रिश्ते समर्पित जीवन की प्रत्येक घटना, गतिविधि, भावना, आकांक्षा व स्वप्न के एक दिन समर्पित है और उसे पूरी भव्यता और नव्यता से मनाने के नए-नए ढंग ईजाद किए जा रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आक्रामक प्रचार-प्रसार से चाहकर भी कोई बच नहीं पाता और उपभोक्तावाद अपनी पूरी नंगई के साथ समाज के हर वर्ग, श्रेणी या आय के अन्दर गहरी पैठे बनाने में सफल हुआ है।'' (हंस जुलाई 2015 पृष्ठ-16)

एक आई.ए.एस. अधिकारी के रिटायर होने पर विदेश में नौकरी पैशा उनका पुत्र उन्हें बड़ी शानदार पार्टी देने और उसमें उम्दा विदेशी शराब पेश करने का आग्रह करता है। कहानी के ठाठ-वाट का भी जीवन्त वर्णन है।

सरप्राइज (ललिता यादव) में कभी पति-पत्नी रह चुके दो व्यक्ति संयोग से ट्रेन के कंपार्टमेण्ट में आमने-सामने की बर्थ पर मिलते हैं और स्वाभाविक रूप से कश-म-कश घिरने लगती है। बहुधा ऐसी हालत में अतीत राग बजता है। शिकवे-शिकायत चलते हैं और फिर किसी नाटकीय मोड़ पर कहानी का अन्त हो जाता है। मुकेश वर्मा ने कहानी के पूर्व भूमिका या विषय-प्रवेश या उद्देश्य स्वरूप टिप्पणी की है :

''सामान्य तौर पर भावनाओं के आवेग, उद्वेग में पुरानी यादों की कटु और तिक्त स्मृतियों को उभारने की चालू लेखकीय परम्पराएँ हैं। लेकिन लेखिका इन सबसे बचकर निकलती हुई एक व्यावहारिक स्थिति के उतार-चढ़ाव पर ही संयत रहती है।''

(समावर्तन, अगस्त 2015 में मुकेश वर्मा की टिप्पणी)

ऐसा आदर्श मानवीय और व्यावहारिक अन्त किसी पुराने असफल जोड़े का दुर्लभ है।

यहाँ एक नदी थी : (सुवास कुमार) संग्रह की शीर्षनामा कहानी है, जिसमें एक परिवार के चार पुश्तों की कथा के द्वारा एक गाँव के बनने बिगड़ने और विचलने की कहानी है। यहाँ एक ऐसे परिवार की त्रासद कथा है, जिसमें पहली और तीसरी पीढ़ी अपने समय और समाज के यथास्थितिवाद से संघर्ष करती हुई मृत्यु का शिकार होती है। वहीं दूसरी ओर दूसरी और चौथी पीढ़ी यथास्थितिवाद से समझौता कर बेहतर जीवन जीने की जुगत में लगी रहती है। कहानीकार की असली चिन्ता गाँव की मानसिकता की है, जो जड़वत रहती है। सहना और चुप रहना जानती है। सरकार से कभी अपने अधिकार और देय के लिए शिकायत नहीं करती। जनता में असीम ताकत है। काश, इसे वह जान पाती और आजमाती। यहीं चिन्ता लेखक की है। वह जनता को जगाकर उसे उसका हक दिलाने के पक्षधर हैं। जलमुर्गियों का शिकार : (दूधनाथ सिंह) में एक धूसर और बदरंग दुनिया का यथार्थ है। यहाँ राजनीति में क्रूरता और अमानवीयतय की मारक छवियाँ है, तो गहन संवेदना के मार्मिक क्षण भी। कालीचरण कहाँ है? राजनीति पर अपराध माफिया को दिखाती हैं। यों यह कहानी हिंसा और ससपेंस से बुनी गई है फिर भी यह पाठक को आतंकित नहीं करके उस अँधेरी और अनैतिक दुनिया के प्रति जुगुप्ता और घृणा पैदा करती है। 'इज्जत' समाज की तलहट में जीवन गुजारने वाली कन्नी की मार्मिक कहानी है जो झुग्गी बस्ती में संघर्षभरा जीवन व्यतीत करती है। अपनी माँ की मृत्यु पर झूठा रूदन करने वाली कन्नी का बच्चा कड़ी दोपहरी में अपनी इज्जत बचाने में संघर्ष में मर जाता है और फिर वह सचमुच धाड़ मारकर रोने लगती है।

शीर्षनामा कहानी 'जलमुर्गियों का शिकार' में दो भाई हैं। एक हिंसा से पाता है, तृप्ति और आनन्द तो दूसरा त्रास अनुभव करता है। 'अम्माएँ' बुन्देलखण्ड के ग्रामीण जीवन के यथार्थ का हाहाकारी पक्ष प्रस्तुत करती हैं। हर साल पड़ने वाले अकाल के कारण सारे पुरुष घर से भाग गए हैं और औरतों की स्थिति इतनी दयनीय

है कि एक ही साड़ी रहने के कारण वे बारी-बारी से बाहर निकलती हैं। इक्कीसवीं सदी में यह आदिम अवस्था हमारे चहकते लोकतन्त्र पर प्रश्नचिह्न हैं।

कितना गिनाया जाए, क्या-क्या कहा जाए। देश की खुशहाली तरक्की का राग अलापना और सत्ता पर बहुमत के गणित से काबिज होना एक बात है और जनता के साथ हमदर्दी और उसे यथास्थिति से ऊपर उठाना दूसरी बात। कहानीकार तो युग की नब्ज पहचानते हैं। जैनेन्द्र कुमार के शब्दों में ''युग की प्रत्येक अगली लहर के आगे जो कुछ लहरा रहा है, हमें वहीं चाहिए, हमें पुराना कुछ नहीं चाहिए।'' (समय और हम) कहानीकारों ने युग की विसंगतियों, विडम्बनाओं और यथास्थिति की अन्तर्यात्रा करते हुए संकेत दिया है कि सब मिलाकर हमारी स्थिति दयनीय ही है। भले ही हम सर्वजन हितकारी योजनाओं के गीत गाते नहीं अधाएँ। समकालीन कहानी ने युग की नब्ज पहचानी और दुःखती रगों को छूकर हमें जगाने का प्रयास किया है।

गाँधी-कला : साहित्य-सूत्र

सुधीर कुमार

प्रस्तुत आलेख में महात्मा गाँधी (1869-1948) के वांग्मय में...(व अन्य पुस्तकों व उद्धरणों) संकलित व संग्रहीत कला/साहित्य/लेखन सम्बन्धी विचारों के आधार पर कुछ कला-सूत्र संग्रह करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। प्रयास का मुख्य उद्देश्य यह है कि गाँधी जी कला/साहित्य-सम्बन्धी विचारों को, समाज-संस्कृति-पर्यावरण-विश्व-दृष्टि-दर्शन आदि के समक्ष उपस्थित जटिल समस्याओं व संकटों के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण मानते हुए, सूत्रात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाए। कला/साहित्य/लेखन को तत्त्वतः और गाँधी-दर्शन में भी, जीवन, समाज, संस्कृति, पर्यावरण, विश्व-कल्याण, सत्य, प्रेम, करुणा, अहिंसा आदि जैसी अवधारणाओं या नैतिक/आध्यात्मिक मूल्यों से पृथक् करना असंभव है। अतः कला साहित्य, लेखन-इनके रूपात्मक भेद इन्हें तत्त्वतः 'एकात्मक' ही सिद्ध करते हैं। कला, साहित्य, मूलतः 'आत्म' की अभिव्यक्ति ही तो हैं, 'व्यक्त' भिन्नताओं के बावजूद।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि महात्मा गाँधी कला या साहित्य के समीक्षक नहीं थे; अतः उनके कला-साहित्य सम्बन्धी विचारों में एक कलाविद् या साहित्य-शास्त्र में निष्णात किसी विद्वान जैसी गहरी समझ या विश्लेषण-क्षमता को आरोपित करना या उसकी आकांक्षा करना समीचीन नहीं होगा। यहाँ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गाँधी जी के दर्शन व जीवन पर साहित्य/कला (भक्ति साहित्य, गीता, रामचरितमानस, तिरुकुराल, रामायण, गुरु नानक, कबीर, तुकाराम, सूरदास, नरसी मेहता, शेक्सपियर, मिल्टन, शैली, दाँते, गेटे, विलियम ब्लेक, जॉन बुनियन, टॉल्सताय, थोरो, रस्किन, कारलाइल, डिकेंस टैगोर, बंकिम चन्द्र आदि) का गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके लेखन में एक अद्भुत साहित्यिक अन्तरद पाठीयता दृष्टिगोचर होती हैं—जिसके माध्यम से गाँधी कलात्मक/काव्यात्मक 'अभिव्यक्तियों के माध्यम से

अंग्रेजी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-160014, ई-मेल : ksudhir 62@gmail.com, मो. : 08054368260

जीवन की गहन-गम्भीर सांस्कृति-आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्थितियों व समस्याओं को समझने व समझाने का प्रयास करते हैं। इस विषय पर मैं गत 3 दशकों से लगातार लिख रहा हूँ। गाँधी जी को 'सहृदय' कहा जा सकता है।

संक्षेप में यहाँ मेरा, प्रयास पाठक-वर्ग के समक्ष, एक प्रयोग के तौर पर कुछ गाँधी कला/साहित्य-सूत्र', प्रस्तुत करना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि गाँधी जी एक प्रकार के कला समीक्षक या साहित्य-समीक्षक थे—इसे स्थापित किया जाए। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि भारत के विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के साहित्य/सांस्कृतिक-अध्ययन के विभागों में साहित्य या कला की सैद्धान्तिकी के रूप में प्रधानतः मार्क्सवादी/वामपंथी/नववामवादी विचारधारा के वर्चस्व से आक्रान्त पाठ्यक्रम ही हजारों-लाखों विद्यार्थियों को पढ़ाए जा रहे हैं। प्रश्न यह है कि क्या भारत की सांस्कृतिक-साहित्यिक वैचारिकी में जिसमें वेदान्त, भक्ति-साहित्य, नाट्य-शास्त्र, महाकाव्य, तोल्लकापियम, भरतमुनि से आचार्य जगन्नाथ तक के महान् साहित्य-कला सैद्धान्तिकी के विद्वान, आनन्द कुमारस्वामी, बंकिम चन्द्र चटर्जी श्री अरविन्द टैगोर, प्रेमचन्द, फुले, आम्बेडर, तिलक, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, हजारीप्रसाद, द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल आदि जैसे महान् चिन्तक विद्यमान हैं। ऐसा कुछ नहीं है, जिसे साहित्य/कला के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में 'सैद्धान्तिकी' के रूप में स्थापित किया जा सके।

एक और बात, इन कुछ फुटकर गाँधी-वचनों से किसी सुसंगत सैद्धान्तिकी का निर्माण नहीं हो सकता है—किन्तु इन सूत्रात्मक वचनों से साहित्य-कला के समग्र जीवन के साथ जो अन्तर्सबन्ध हैं, उनका आभास गाँधीजी को बहुत स्पष्टता के साथ था—इसमें सन्देह नहीं। मानव जीवन को ही 'कलाकृति' के रूप में देखने वाले गाँधी जी के लिए कला या साहित्य साधन मात्र है, साध्य तो मुक्ति/स्वराज ही है, जिसे आत्मबोध भी कहा जा सकता है।

गाँधी कला : साहित्य सूत्र

1. ''कला-प्रेमी प्रायः कला के बहुत सीमित पक्ष को ही समझते हैं और उस सीमित अर्थ के द्वारा विभिन्न दोषों को ढकने का प्रयास करते हैं। वह प्रत्येक वस्तु जो आँख को आकर्षित करती है, वह आवश्यक रूप से कला ही हो, यह सत्य नहीं है। यहाँ तक कि जिसे बहुत से कला-विशेषज्ञों द्वारा कला के रूप में स्वीकार किया जाता है वह कला ही हो, ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैंने बहुत सी कलाकृतियों (चित्रों, मूर्तियों) के विषय में विश्व के प्रसिद्ध कला-समीक्षकों के परस्पर विरोधी मत भी पढ़े हैं। अतः हमें गम्भीर विचार करना चाहिए—वास्तव में कला है क्या? उसका अर्थ क्या है?'' उपर्युक्त सूत्रात्मक कथन में गाँधी एक सहृदय दर्शक/पाठक से अपेक्षा करते हैं कि वह

कला/साहित्य के समग्रतापरक-सारभूत अर्थ या सत्य को समझने का प्रयास करते हुए, किसी कला या साहित्यिक कृति के महत्त्व का प्रतिपादन करे या ग्रहण करे। ध्यान रहे कि वे यहाँ टॉल्स्टॉय की प्रसिद्ध कृति व्हाट इज आर्ट?[2] जो उनकी प्रिय पुस्तकों में से एक थी, के कला-सम्बन्धी विमर्श के महत्त्व को दर्शाते हैं। चूँकि टॉल्सटॉय ने तत्कालीन (उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की) कला, जिसे आधुनिक कला कहा जा रहा था। योरोप में उसकी सर्वोदयी, सर्वमंगलकारी सत्यपरक अभिव्यक्ति से रहित कलात्मकता की प्रखर निन्दा की थी। अतः गाँधी जी भी कला/साहित्य की अभिव्यक्ति को, उसके अर्थ को लोक संग्रह से, लोककल्याण से, सत्य से संयुक्त करते हुए ग्रहण करते हैं। अन्यथा अभिव्यक्तिवाद, आधुनिकतावाद उत्तराधुनिकतावाद जैसे—'वादों' के अति विरल, अति दुरुह भावों को अति विशिष्ट कला-काव्यरूपों में अभिव्यक्ति प्रदान करने साहित्यकारों/कलाकारों को टॉल्स्ताय/गाँधी की वैचारिकी में उनकी कला/काव्य-कर्म की आलोचना का सामना करना होगा। आधार है कला-साहित्य का वृहत् लोक से क्या सम्बन्ध है? यदि कला/साहित्य एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग की ही समझ में आ सकती है व उसी वर्ग के हितों को वहन करती है, तो वह सच्ची कला/साहित्य का धर्म लोककल्याण हेतु मानव चेतना का संस्कार करना है। कला या साहित्य के जिस रूप से, अभिव्यक्ति से लोक में अमंगल की सृष्टि हो, वह सच्ची कला या सच्चा साहित्य नहीं है।

2. ''यदि एक कलाकृति बाहय सौन्दर्य से परिपूर्ण है, किन्तु इसके बाह्य सौन्दर्य के पीछे शोषण, अन्याय व हिंसा करने वाली शक्तियाँ रहती हैं, तो उसे शैतानी-कला ही कहा जाएगा।''[3]

यहाँ ध्यातव्य है कि गाँधी जी सदैव साधन की पवित्रता (साध्य की पवित्रता के साथ-साथ) पर विशेष बल देते थे (देखिए हिन्द स्वराज, अध्याय XVI पृ. 60-66)[4]।

सच्चा साहित्य या सच्ची कला धर्म-केन्द्रित (नैतिकता-केन्द्रित) होनी चाहिए, जिसके द्वारा समाज में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों (सत्य, अंहिसा, करुणा, स्वतन्त्रता, सर्वोदय, विश्व-शान्ति, स्वदेशी, साम्प्रदायिक सद्भाव आदि) का प्रचार व प्रसार हो। अतः कला या साहित्य साध्य नहीं है, साधन है मानव जीवन को और अधिक सत्यपरक, सुन्दर बनाने के लिए। यदि साहित्य या कला के सृजन के पीछे दमनकारी शोषण करने वाली शक्तियाँ कार्यरत हैं, तो उस प्रकार के साहित्य या कला में साधन भ्रष्टता या नैतिक-प्रदूषण का दोष आ जाता है। देखा गया है कि नात्सी, स्टालिनकारी (वामपंथी) तानाशाही सत्ता-संरचनाओं द्वारा जिस प्रकार का 'प्रोपेगेंडा साहित्य' निर्मित करवाया गया। वस्तुतः वह गाँधी जी के अनुसार 'शैतानी' साहित्य/कला ही कहा जाएगा। प्रख्यात लेखक प्रेमचन्द्र भी अपने प्रसिद्ध आलेख 'साहित्य का उद्देश्य' भी अपने प्रसिद्ध आलेख 'साहित्य का उद्देश्य' में सच्चे साहित्य की यही, इसी प्रकार की

'धर्म-केन्द्रित', या 'नैतिकता-केन्द्रित' परिभाषा करते हैं। गाँधी जी के अनुसार 'धर्म' सम्पूर्ण जीवन सम्पूर्ण सृष्टि का नैतिक/आध्यात्मिक आधार है; (जिसे उन्होंने 'सत्य' के रूप में भी हमारे समक्ष रखा) न कि एक विशेष पन्थ या उपासना-पद्धति। गाँधी जी की साहित्य/कला-दृष्टि को प्रेमचन्द ने ग्रहण करते हुए 'साहित्य का उद्देश्य' में कहा।[5] : ''मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।'' (पृ.-167-168)

कहना न होगा कि गाँधी जी का जो 'नैतिक आग्रह' है, वह भी एक कलाकार या साहित्यकार का 'सत्याग्रह' ही सिद्ध होगा। अतः आधुनिक/उत्तर आधुनिक कला/साहित्य के बहुत सारे उदाहरण, कृतियाँ जिनके सर्जकों में नैतिक/आध्यात्मिक शक्ति का अभाव 'बोध' नीतियाँ नहीं सिद्ध होगी।

3. 'जो लोग' कला, कला के लिए है—ऐसा सोचते हैं, वे भ्रम से ग्रस्त हैं। कला का जीवन में एक स्थान है, इस प्रश्न के बावजूद कि 'कला क्या है?' किन्तु कला एक साधन मात्र है उस साध्य का, जो कि हम सभी को प्राप्त करना ही चाहिए। किन्तु जब कला अपने में साध्य बन जाती है, तो वह मानवता को पतन व पराधीनता की ओर ले जाती है।'' (पृ.-160)[6]

यह सूत्र तो पूर्व-सूत्र (2) का विस्तार ही है। कला या साहित्य का अस्तित्व या सार्थकता तभी तक है, जब तक वह जीवन में धर्म-केन्द्रित पुरुषार्थ-चतुष्ट्य (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष), जो कि सम्पूर्ण मानवता का साध्य कहा जा सकता है, की प्राप्ति का साधन बने। स्पष्ट ही है कि गाँधी जी ''धर्म-शून्य या नैतिकता-शून्य'' साहित्य/कला को अनर्थकारी मानते हैं। इसी अर्थ में उस प्रकार का सृजनात्मक विलास, जिसे मूल्यहीनता को ही मूल्य बनाया गया हो, जिसका कोई नैतिक महत्त्व समाज-संस्कृति, के लिए न हो, समाज को पराधीनता व पतन की ओर ले जा सकता है— इसमें संदेह नहीं। खतरा यह है कि गाँधी के इस 'नैतिक आग्रह' की कसौटी पर न केवल भारत की, बल्कि सभ्य व प्रगतिशील उन्हें लाने वाले अन्य राष्ट्रों की बहुत-सी प्राचीन एवम् आधुनिक कलाकृतियाँ महत्त्वहीन ठहरायी जा सकती हैं।

4. हमने किसी प्रकार, येन-केन प्रकारेण यह स्वीकार कर लिया है कि कला का निजी जीवन की पवित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपने सम्पूर्ण अनुभव के आधार पर यह बलपूर्वक कह रहा हूँ कि इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं हो सकता। जबकि मैं अपने जीवन के अन्त के समीप पहुँच रहा हूँ। मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि जीवन की पवित्रता ही सर्वोच्च व सबसे सच्ची कला का उदाहरण है।[7] (पृ.-274)

कला/साहित्य की इस, प्रकार की अवधारणा को उसकी सर्वश्रेष्ठ परिभाषाओं से एक माना जा सकता है, क्योंकि इस दृष्टि से सच्चा साहित्यकार/कलाकार वह हर मानव है, जो अपने जीवन, अपने मन, वाणी, विचार, कर्म का पवित्रीकरण, शुद्धिकरण करता चलता है। अतः पवित्रता से युक्त जीवन ही श्रेष्ठ कला या साहित्य का उदाहरण है, नैरुक्तिक (शब्द-उत्पत्ति विज्ञान) दृष्टि से कला[8] का एक अर्थ होता है : ''किसी भी सम्पूर्ण (वस्तु, विचार, अवस्था, समय आदि) का एक अंश भाग' (पृ. 387-388)। किसी भी 'सम्पूर्ण' (सृष्टि, जीवन अनन्त ब्रहमाण्डीय विस्तार से लेकर एक अणु तक) के एक अंश/भाग का चित्रण या उसकी पुनर्रचना इस प्रकार हो कि वह पूर्णतः व पवित्रता के महान् भावों की पुष्टि करे तो उस कृति को, (उस कृतिकार की कृति जो जीवन के हर पक्ष में पवित्रता का अनुसरण करता हो) सच्ची कला 'साहित्य' के प्रमुख अर्थ हैं[9] : ''साहचर्य, सम्बन्ध, समाज, सह-अस्तित्व'' आदि साहित्यकार/कलाकार की कृति में या उस कृति के माध्यम से जीवन में साहचर्य, सह-अस्तित्व, शान्ति की स्थापना का विचार प्रमुख रूप से प्रकट होता हो, तो वह कृति श्रेष्ठ साहित्य का उदाहरण है। दूसरे शब्दों में जो शुचिता सच्चे कलाकार के जीवन में है, वही उसकी कृति में भी परिलक्षित होगी—विभिन्न जीवन-दशाओं के, चरित्रों/पात्रों के चित्रण के द्वारा।

5. ''यदि एक कलाकृति (पेन्टिंग) दर्शक/पाठक के मन में बुरे विचारों को उत्प्रेरित या उत्पन्न करती है, तो इसे कलात्मक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सच्ची कला तो वही है, जो किसी मनुष्य को धर्म के पथ पर अग्रसर करती है और उसे श्रेष्ठ विचार प्रदान करती है। यदि कोई भी कृति मनुष्य को नैतिक पतन की ओर ले जाती है, तो इसे कला नहीं कहा जा सकता, यह तो अश्लीलता का उदाहरण ही होगी।''[10]

भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र (वीं शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) से आनन्द कुमार स्वामी व टैगोर (20वीं सदी) तक कला/काव्य या साहित्य के सामाजिक व नैतिक सरोकारों, उत्तरदायित्वों पर निरन्तर बल दिया गया है, गाँधी जी भी अपवाद नहीं है सार्त्र का प्रश्न भी यहीं है : ''लिखें, क्यों? किसके लिए लिखें?''[11] उत्तर में सार्त्र काव्यात्मक आनन्द और परमार्थ-साहित्य द्वारा प्राप्ति की बात करते हैं और उसे साहित्य के केन्द्र में रखते हैं। यह 'परमार्थ' जो साहित्य/कला का सत्य है—वह मानवता को धार्मिक/नैतिक पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है। यही मत गाँधी का भी है।

6. ''लेखन अपने आप में ही सत्य के साथ किए जाने वाले, प्रयोगों में से एक प्रयोग है।''[12]

विश्व के इतिहास में इस सूत्रात्मक उक्ति का अपवाद मिलना असंभव है। विश्व में साहित्य/कला के प्रमुख चिन्तकों ने कला/साहित्य का प्रमुख धर्म/कर्तव्य उत्तरदायित्व सत्य की रचना, पुनर्रचना, देश, काल समाज, प्रकृति, संस्कृति की स्थिति

के अनुसार करना ही माना है। सत्य का अनुकीर्तन, अनुकरण, अनुसन्धान (कला) कृति के माध्यम से करना ही एक साहित्यकार का धर्म है। इसी अर्थ में कला/साहित्य भी कलाकार/साहित्यकार के सत्याग्रह को निदेर्शित करती/करता है। अतः कला/साहित्य एक प्रकार का सृजनात्मक सत्याग्रह ही है—यह गाँधी जी का आशय है।

7. ''मैं कला और साहित्य के उस रूप को अच्छा मानता हूँ, जो कि लाखों लोगों के साथ संवाद कर सके।'' (अर्थात् उनकी समझ में आ सके, उन्हें प्रभावित कर सके।) हरिजन, नवम्बर 14, 1936।

भारतीय काव्यशास्त्र (भरतमुनि, आचार्य अभिनवगुप्त आदि ने) में साधारणीकरण और तादात्म्य स्थापित करने की प्रक्रिया को प्रमुख स्थान दिया गया है। महान् अथवा सच्ची कला/साहित्यिक कृतियाँ मानव भावों/भावनाओं व जीवन की विभिन्न स्थितियों का प्रतिबिम्बन या चित्रण इस कुशलता के साथ करती हैं कि उन कृतियों से उद्भूत 'अर्थों/सत्यो' का साधारणीकरण जनमानस में हो जाता है। कृति, कृतिकार व जनता में सकता है, इसी साधारणीकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से संभव होता है। उदाहरणार्थ, रामायण/रामचरितमानस के मर्यादा पुरुषोत्तम राम, तामसिक गुणों से युक्त विद्वान्, वीर किन्तु...बुराई के प्रतीक रावण, तथा इसी प्रकार महाभारत के महान् पात्रों योगीराज कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, कर्ण, भीम, द्रौपदी, दुर्योधन आदि का चित्रण इतनी कुशलता से किया गया है कि असंख्य जन (भारत व सारे दक्षिण-पूर्व एशिया में) इन पात्रों की छवियों, उनके महत्त्व या अर्थों को अपने हृदय में स्थापित कर लेते हैं। यही साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न काव्यात्मक अद्वैत है। यदि ठीक इस प्रक्रिया के विपरीत, एक साहित्यिक कृति अपनी विशिष्ट किन्तु अत्यन्त दुरुह अभिव्यक्ति के कारण, साधारण जनता से कोई संवाद नहीं स्थापित कर पाती है। भारत में लिखा जा रहा, लिखा गया अधिकांश अंग्रेजी साहित्य इसी श्रेणी में आता है। भला सलमान रुश्दी, अमिताभ घोष, शशि थरूर, अरुन्धती रॉय, विक्रम सेठ, अरविन्द अडिग आदि भारतीय/भारत-मूल के लेखकों की कृतियों का साधारण जनता से कोई संवाद संभव है? भारत में अंग्रेजी भाषा का समाज क्या है, कितना है? यही मूल प्रश्न उठ खड़ा होता है।

8. एक सच्चा कवि वही है, जो मानव हृदय में जो भी श्रेष्ठ तथा हितकर है, उसको अभिव्यक्त करता है। कवि/लेखक सभी पाठकों को समान रूप से या एक ही प्रकार से प्रभावित नहीं करते हैं; क्योंकि सभी पाठकों की यह सूत्र भी सूत्र संख्या 7 (सात) के महत्त्व को और अधिक स्पष्टता के साथ व्याख्यायित करता है। गाँधी जी भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में प्रमुखता से स्थापित एक सहृदय पाठक, रसिक या बहुश्रुत-पाठक/ दर्शक की ओर संकेत करते हैं। किन्तु एक महान कृति, जैसे रामचरितमानस या गीता (जो पुस्तकें गाँधी जी को अति प्रिय थीं) जनमानस (सामान्यजन) को रुचिभेद के कारण, परिस्थितियों के कारण भिन्न-भिन्न कारणों से

महत्त्वपूर्ण प्रतीत होंगी। विद्वानों ने भी गीता व रामायण के विभिन्न प्रमुख अर्थों को केन्द्र में रखकर भिन्न-भिन्न टीकाएँ लिखीं है। यह कृतिकार की महानता ही है, कि उसकी कृति अनन्त अर्थों की सृष्टि करने में समर्थ होती है। भारतीय भक्त कवियों की रचनाएँ (आण्डाल, अक्का, महादेवी, मीरा, नानक, तुकाराम, कबीर, बसव, नरसी, तुलसी, शंकरदेव विद्यापति, इत्यादि) शेक्सपियर, वर्डसवर्थ, शैली, कीट्स इनियट से लेकर सुब्रमनियम भारती, नारायण गुरु, बशीर, प्रेमचन्द, अत्तेय, निर्मल वर्मा, महादेवी, बंकिमचन्द्र, अरविन्द आदि महान् लेखकों की रचनाएँ इसलिए कालजयी हैं, क्योंकि उनकी बहुलार्थकता में सम्पूर्ण मानव जाति व सृष्टि के कल्याण के लिए आवश्यक सन्देश प्रकट होते हैं।

9. एक कवि को, जब तक वह लेखन-प्रक्रिया में व्यस्त रहता है, अपनी कृति के सभी संभव अर्थों का बोध नहीं होता, बल्कि यह भी नहीं पता होता कि उसकी कृति किन अर्थों को उत्पन्न करने में समर्थ है या होगी। काव्य की सुन्दरता यह है कि कृति के अर्थ का महत्त्व, कृतिकार या कवि के महत्त्व से कहीं अधिक होता या हो जाता है। इस अर्थ में 'कृति' कृतिकार के परे चली जाती है। कवि अपनी सृजनात्मकता की सर्वोच्च उड़ानों के क्षणों में जिस वृहत् सत्य का अनुभव करता है, उसे प्रायः वह अपने जीवन में अनुभव नहीं कर पाता/पाती है। अधिकांश कवियों के जीवन-वृत्त उनकी काव्य-कृतियों के सत्यों से मेल नहीं खाते हैं। (यंग इण्डिया, नवम्बर 12, 1925)

ध्यान रहे गाँधी जी का यह कथन 1925 का है, जब पश्चिम की सैद्धान्तिकी में चिन्तन में उत्तरसंरचनावाद, संरचना (डिंकसट्रक्शन) या उत्तराधुनिकतावाद जैसे विमर्श, जो कि 1960 के दशकों के बाद प्रमुखता से अर्थ की बहुलता या अनन्तता, या अर्थ के विखण्डन-प्रक्रिया के विमर्श हैं, उपस्थित ही नहीं थे। और गाँधी जी ने महान् कृतियों के अनन्त अर्थों को उत्पन्न करने की शक्ति की ओर स्पष्ट संकेत किया है, वह अति महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि वह भर्तृहरि (वाक्यपदीय) की शब्द-शक्ति के सिद्धान्त व भारतीय परम्परा में रचनाकार की अज्ञात होने की लगभग रोलॉ बार्थ जैसे संरचनावादी/उत्तरसंरचनावादी समीक्षक को 'ऑथर इज डेड' जैसा लेख 1967 में लिखना पड़ा था।

10. ''कवियों को उनकी कृतियों के पिंजड़ों में कैद या सीमित नहीं रखा जा सकता है। एक सच्चा कवि काल में सनातनता के लिए लिखता है। उसकी कृति में शब्दों के माध्यम से इतने महत्त्वपूर्ण अर्थों का उद्घाटन होता है, जिनका उस कवि को, जब वह उन शब्दों को लिख या कह रहा होता है, कतई पता नहीं होता।'' (हरिजन फरवरी 2, 1934)

बिना किसी वाग्विलास के बिना किसी जटिल सैद्धान्तिकी की और भी अधिक जटिल, दुरूह अभिव्यक्ति के, जो कि आज की 'लिटरेरी थियरी/साहित्य सैद्धान्तिकी'

की अनिवार्यता है, सरलतम शब्दों में गाँधी जी ने एक कवि की महानता की, उसकी कृति की सनातनता की व्याख्या की है और भारतीय काव्य शास्त्र के. केन्द्र में स्थित शब्द-शक्ति सिद्धान्तं की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित किया है। यह तथ्य नहीं भुलाना चाहिए गाँधी जी ने अपने सम्पूर्ण (वांग्मय-100 अंकों में उपलब्ध) विमर्श में भारतीय काव्यशास्त्र की किसी सन्दर्भ में चर्चा नहीं की है। किन्तु गाँधी जी को भला क्या पता था कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में भी अनन्त अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है, यही गाँधी के लेखन की सनातनता है, काल में होते हुए भी एक सच्चा कवि।

11. ''एक सच्चा कवि प्रेरित होकर अपनी कृति की रचना करता है, किसी (बाह्य शक्ति) के आदेश से प्रभावित होकर नहीं। और इसलिए व प्रशंसा प्राप्त करने के लिए नहीं लिखता है। कृति की सृजन-प्रक्रिया में ही अन्तर्निहित उसका आनन्द व मानदेय होता है।'' (हरिजन, अक्तूबर 1936)

आज के सन्दर्भों में जहाँ बाजार की, व्यवसाय की शक्तियाँ, पूर्व की या आज की सत्ता संरचनाओं की शक्तियों से समझौता करते हुए, एक विशेष प्रकार के वैचारिक पूर्वाग्रहों से संक्रमित हुए साहित्य का निर्माण, प्रचार व प्रचार जनसंचार माध्यमों (मीडिया), साहित्य-उत्सवों व विश्वविद्यालय-पाठ्यक्रमों के माध्यम से करवाती हैं, तब गाँधी जी के इस कथन के महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। 1936 में गाँधी जी की वाणी को ध्वनित करते हुए महान् लेखक प्रेमचन्द ने सही कहा था कि सच्चा साहित्य देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।'' (पृ.163)[14]

उदाहरणार्थ आज अंग्रेजी भाषा में रचना करने वाले साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों की कृतियों में भारत की सनातनधर्मी परम्पराओं की, एक विशेष समुदाय के सांस्कृतिक, प्रतीकों की भर्त्सना, निन्दा.....समीक्षा नहीं और मीडिया में, किया जाता है। यदि मात्र 'देशभक्ति परक' साहित्य महान् साहित्य नहीं है (प्रेमचन्द), तो विचारणीय है कि 'देश-द्रोह परम्' साहित्य का स्थान गाँधी और प्रेमचन्द के विमर्श में क्या होगा?

12. इस तथ्य से भला कौन इन्कार कर सकता है कि जिसे विज्ञान और कला आजकल कहा जा रहा है वह आत्म को उत्थान की ओर प्रेरित करने के स्थान पर उसको विनाश की ओर प्रेरित करते हैं। हमारे चित्त में श्रेष्ठ भावों, मूल्यों, विचारों को प्रेरित करने के स्थान पर यह निकृष्टतम भावों की ओर हमें ले जाते हैं।'' (यंग इण्डिया नवम्बर 13, 1924)

कहना न होगा कि आज के वैश्विक परिदृश्य में, विज्ञान, प्रौद्योगिकी व कला/साहित्य में एक विचित्र प्रकार की संगति (या कुसंगति?) देखी जा सकती है। कला का व्यवसायीकरण, प्रौद्योगिकी व बाजार की शक्तियों के द्वारा द्रुत गति से हो रहा है तथा नैतिक सापेक्षतावाद (मोरन रिलेटिविटी) के चलते 'नैतिक मूल्य केन्द्रित'

कला या साहित्य की पैरवी या समर्थन करना रूढ़िवादी सोच का लक्षण माना जाता है। यदि भारत के सार्वभौमिक, सनातनी 'नैतिक/आध्यात्मिक मूल्यों' (जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि) के आधार पर, जो कि भारतीय काव्य-कला-दर्शन के केन्द्र में सदैव रहे हैं, किसी लेखक/कलाकार की किसी.....स्वतन्त्रता का हनन कहकर उसकी भयंकर निन्दा आज के मीडिया में तथाकथित धर्मनिरपेक्ष उदारवादी-वामपंथी बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा होती है। मूल्य बोध और उसके स्रोतों की चर्चा करने का अर्थ हो जाता है—हिन्दुत्व की वैचारिकी का प्रसार करना। जैसे कि हिन्दुत्व (हिन्दू होने का भाव) की संज्ञा ही प्रदूषित हो?

13. ''मानव कृत कला/कलाकृतियों का महत्त्व इसलिए है कि वह/वे हमें आत्मोन्नति व आत्मबोध के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती हैं।'' (यंग इण्डिया नवम्बर 13, 1924)

इस सूत्र को भी पूर्व में उल्लेख किए गए सूत्रों के अर्थ व महत्त्व को और अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से पढ़ें; कला/साहित्य का परम् अर्थ यही है। इसका भाव यह नहीं कि गोदान या मैला आँचल की स्थानीयता, उसके पात्रों के कर्म व उनके द्वारा व्यक्त जीवन-दृष्टियाँ, हमें 'आत्मबोध' के लिए प्रेरित नहीं करतीं। कृति के अर्थों के साथ जैसे ही एक पाठक का तादात्म्य स्थापित होता है—'आत्मबोध' (मैं कौन हूँ? को अहम्?) की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

14. 'वस्तुओं के दो पक्ष होते हैं—बाह्य और आंतरिक। बाह्य पक्ष का कोई अर्थ नहीं यदि यह अन्तपक्ष (या आंतरिक) के साथ परस्पर पूरक भाव के साथ (सहयोगी भाव के साथ) नहीं रहता है। इसी प्रकार सच्ची कला/साहित्य को 'आत्मा/आत्मा' की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। कला/साहित्य में बाह्य पक्षों या रूपों का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि वे भारत के आत्म-भाव को किस सीमा तक अभिव्यक्त करते हैं?'' (यंगइण्या, नवम्बर 1924)

क्या महान् कृतियों (कालिदास, शेक्सपियर, टी.एस. एलिटर, जेम्स ज्वाइस, वर्जिनिया कल्फ, चिनुआ अचेबे, बेकेट, प्रेमचन्द, अज्ञेय, टैगोर, निर्मल वर्मा, सोल्जेनित्सिन डिकेंस, हार्डी, मणिमेरवलै, सीलपद्दिकरम् आदि। में बाह्य (फॉर्म) तथा आन्तर, (कन्टेण्ट या वर्णित-सत्य) में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध नहीं होता है? और प्रत्येक महान् कृति 'आत्म' की ही अभिव्यक्ति होती है—इसी अर्थ में उस कृति में 'तादात्म्य' उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

15. ''सत्य की खोज, एक कलाकार के लिए सर्वप्रथम होना चाहिए, सुन्दरता व अच्छाई (शिवत्व) इस कृति में कलाकार द्वारा रुपायित बाद में की जा सकती है। ...कलाकार को सुन्दरता सत्य में देखना चाहिए।...से समझा सकते हैं। उनको सर्वप्रथम सत्य के दर्शन करना सिखाइए, तत्पश्चात् वे सुन्दरता को सत्य के माध्यम

से, सत्य में ही देख सकते हैं।...इन लाखों भूखे गरीब लोगों के लिए जो कृति/वस्तु, उपयोगी है, वही सुन्दर है।'' (यंग इण्डिया, नवम्बर 20, 1924)

कला के सत्य के द्वारा 'सुन्दर व 'कल्याण (शिवत्व)' को क्यों समझना चाहिए तथा कला के धर्म (उत्तरदायित्व) की, उसकी सामाजिकी-आर्थिकी की ओर गाँधी 1924 में संकेत कर रहे थे—यह दृष्टव्य है।

16. विदेशी भाषा के माध्यम ने, जिनके माध्यम से भारत में उच्च शिक्षा शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को अपार बौद्धिक और नैतिक हानि पहुँची है। अभी हम अपने इस जमाने के इतने पास हैं कि इस नुकसान की भयंकरता का ठीक अंदाज नहीं लगा सकते।'' (हरिजन सेवक 9 जुलाई, 1938)

17. करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकॉले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली थी, वह...सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का यही नतीजा निकला है।...अगर ऐसा लम्बे अरसे तक चला, तो मेरा मानना है कि आने वाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार, करेगी और उसका शाप हमारी आत्मा को लगेगा।''[5]

सूत्र संख्या 16 व 17 को साथ-साथ पढ़ना चाहिए, क्योंकि इन दोनों कथनों में गाँधी जी भारत में साम्राज्यवादी आधुनिकता के द्वारा जिस भयंकर मानसिक पराधीनता को स्थापित किया गया—(वह भी शिक्षा-नीतियों के निर्माण व क्रियान्वयन से) इसकी प्रक्रिया व उसके दुष्परिणामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। गाँधी जी जानते थे कि जब तक राष्ट्रीय चिति या मानस का औपनिवेशीकरण, अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व को हटाकर व भारतीय भाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा/शिक्षा प्रदान कर, उनका प्रचार व प्रसार करते हुए, नहीं होगा, सांस्कृतिक स्वतन्त्रता या स्वराज हमें कभी प्राप्त नहीं होगा। क्या आज के शिक्षा-नीति के निर्माता (सत्ता-वर्ग) वर्ग को गाँधी-टैगोर, श्री अरविन्द, आन्द कुमारस्वामी, स्वामी विवेकानन्द, आम्बेडकर, आदि के भाषा सम्बन्धी विचारों का ध्यान है? अन्यथा गाँधी जी के अनुसार जिस प्रकार का सांस्कृतिक विनाश भारत में होगा, उसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है। गाँधी का समग्र दर्शन अंग्रेजी भाषा के अलोकतान्त्रिक, अमानवीय वर्चस्व के विरुद्ध खड़ा है।

सन्दर्भ :

(अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध उदाहरणों का अनुवाद लेखक ने किया है।)

1. दि कलेटिड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी : (नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1969) अंक 35, पृ. 363
2. लेव तॉल्सतॉय : व्हाट इज आर्ट? (अनु. आइल्मर मॉड) : लन्दन, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटि प्रेस, 1955 सर्वप्रथम प्रकाशित-1898 गाँधी जी हिन्द स्वराज के अन्त में इस पुस्तक का उल्लेख करते हैं।

3. के. जी. मशरुवाला : गाँधी विचार-दोहन (नई दिल्ली : सस्ता साहित्य प्रकाशन) पृ. 176
4. मो. क. गाँधी : हिन्द-स्वराज (अहमदाबाद, नवजीवन, 2015) प्रथम प्रकाशन : 1909 सभ्यता व स्वराज की प्राप्ति हेतु सदाचार व आत्म-शुद्धि को आवश्यक समझते हैं गाँधी जी।
5. प्रेमचन्द : प्रेमचन्द का चिन्तन (सं. नन्दकिशोर आचार्य), बीकानेर; वाग्देवी प्रकाशन, 2012
6. महादेव देसाई : डायरी ऑफ महादेव देसाई (अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, 1932)
7. एन.के. बोस : (सम्पादक) सिलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी अहमदाबाद, नवजीव 1948
8. मोनियर-मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी (संगठन, संशोधन पण्डित ईश्वर चन्द्र), दिल्ली, परिमल प्रकाशन, 2011, पृ.387
9. वही (पृ.1770)
10. ज्याँ पाल सार्त्र : व्हाट् इज लिटरेचर? (अनु. बर्नाड, फ्रेटमैन), बिस्टल, मेथुएन एण्ड कम्पनी, 1983 (प्रथम प्रकाशन 1948) पृ. 26-48; 49-118
11. मो. क. गाँधी : एन ऑटोबायोग्राफी ऑर दि स्टोरी ऑफ माइ एक्सपेरिमेण्ट्स विद् ट्रुथ अहमदाबाद, नवजीवन, 2007 (प्रथम प्रकाशनः1927) पृ. 258.
12. आनन्द टी हिंगोरानी तथा गंगा ए. हिंगोरानी : दि इनसाइक्लोपिडिया ऑफ गांधियन थॉट्स नई दिल्ली, ऑल इण्डिया काँगेस कमेटी, 1985, पृ. 252
13. प्रेमचन्द का चिन्तन : पृ. 162 सन्दर्भ उपर्युक्त। 'साहित्य का उद्देश्य'।
14. मो. क. गाँधी : हिन्द-स्वराज (हिन्दी संस्करण), अहमदाबाद नवजीवन, 2006 (प्र. सं. 1949) पृ. 72-73

अपने गुनाहों का इकबाल

बलराम

हिन्दी में आत्मकथा लेखन की एक क्षीण परम्परा तो रही है, लेकिन उसे बहुत महत्व कभी दिया नहीं गया। हरिवंशराय बच्चन के बाद इस विधा में कथाकार रवींद्र कालिया की कृति 'गालिब छुटी शराब' काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर' के बाद बच्चन की आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूं' खूब चर्चित हुई और 'मधुशाला' का लोकप्रिय गायक इस मामले में शीर्ष पर जा बैठा। हंसराज रहबर ने 'मेरे सात जनम' लिखे और फिर इस क्षेत्र में रामविलास शर्मा ने भी अपने हस्ताक्षर किए, पर न जाने क्यों हिंदी पाठकों के बीच उन कृतियों की चर्चा ठीक से कभी हुई ही नहीं।

काशीनाथ सिंह की कृति 'आछे दिन पाछे गए' के बाद कन्हैयालाल नंदन की आत्मकथा 'कहना जरूरी था' ने भी थोड़ी चर्चा बटोरी, लेकिन बच्चन की 'क्या भूलूं क्या याद करूं' जैसी चर्चा इनमें से किसी को भी नसीब नहीं हुई। कमलेश्वर की 'जलती हुई नदी', राजेंद्र यादव की 'मुड़-मुड़के देखता हूं' और मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' चर्चा कम, कुचर्चा का विषय अधिक बनीं। कुछ अन्य अन्य लेखिकाओं, दलित लेखकों और अल्पसंख्यकों ने तो आत्मकथा को केंद्रीय विधा बनाने तक का अभियान शुरू किया, लेकिन ज्यादातर आत्मकथाएं क्लासिक तो दूर, बेस्ट सेलर तक नहीं बन सकीं। इस विधा में अनावृष्टि और अतिवृष्टि के कुछ दौर आए और चले गए, पर बच्चन के सिवा अन्य किसी को प्रकाश स्तंभ की तरह स्थापित नहीं कर सके। रवींद्र कालिया की 'गालिब छुटी शराब' जरूर लोकप्रिय हुई, जिसके संस्करण-दर-संस्करण होते हुए उसे हिंदी, उर्दू और पंजाबी का संयुक्त प्रकाश स्तंभ बना गए। यह किताब पढ़कर मन्नू भंडारी ने रवींद्र कालिया को लिखा था : 'गालिब छुटी शराब' पढ़कर तुमसे ज्यादा मस्ती तो मुझ पर छा गयी। सामने होते तो बांहों में भरकर बधाई देती।' श्रीलाल शुक्ल ने 'गालिब छुटी शराब' पढ़कर कहा था : 'ऐसी अद्‌भुत कृति शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा में हो।'

मराठी में आनंद यादव की आत्मकथा 'जूझ' चर्चित हुई और उसे साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी हासिल हुआ, लेकिन उसके बरक्स 'गालिब छुटी शराब' में जो व्यापकता और बहुआयामिता है, वह गौर करने लायक है। दया पवार, तुलसीराम, श्योराज सिंह बेचैन और ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथाएं भी ऐसी ही हैं, लेकिन भर-भर बांहों बधाई हासिल करने वाली भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट आत्मकथा 'गालिब छुटी शराब' में रवींद्र कालिया ने अपने मुंहलगी शराब के छूटने का जो वृत्तांत पेश किया है, वह लाजवाब है। वे लिखते हैं : 'भूख कब की मर चुकी है, मगर पीने को जी मचलता है। पीने से तनहाई दूर होती है, मनहूसियत से पिंड छूटता है, रगों में जैसे नया खून दौड़ने लगता है। शरीर की टूटन गायब हो जाती है और नस-नस में स्फूर्ति आ जाती है। एक लंबे अरसे से मैंने जिंदगी का हर दिन शाम के इंतजार में गुजारा है, भोजन के इंतजार में नहीं। अपनी सुविधा के लिए एक मुहावरा भी गढ़ लिया- शराबी दो तरह के होते हैं : एक खाते-पीते और दूसरे पीते-पीते। मैं खाता-पीता नहीं, पीता-पीता शख्स था, मगर जिंदगी की हकीकत को जुमलों की गोद में नहीं सुलाया जा सकता। वास्तविकता जुमलों से कहीं अधिक वजनदार होती है। मेरे जुमले भारी होते जा रहे थे और मेरा वजन हल्का। छह फुट का शरीर छप्पन किलो में सिमटकर रह गया था।'

यह स्थिति आने से पहले की स्थिति पर रोशनी डालते हुए रवींद्र कालिया लिखते हैं : 'लंबे अरसे से बीमार नहीं पड़ा था। याद नहीं पड़ रहा कि कभी सिरदर्द की दवा भी ली हो। मेरे तमाम रोगों का निदान दारू थी, दवा नहीं। कभी खाट नहीं पकड़ी, वक्त जरूरत दोस्तों की तीमारदारी अवश्य की, मगर इधर न जाने कैसे दिन आ गए थे कि जो भी मुझे देखता, स्वास्थ्य पर टिप्पणी अवश्य कर देता। दोस्त यह भी बता रहे थे कि मेरे हाथ कांपने लगे हैं। कितने बुरे दिन आ गए कि जो भी डॉक्टर मिलता, अपने क्लीनिक में आमंत्रित करता। जो पैथालॉजिस्ट था, वह लैब में बुला रहा था और जो नर्सिंग होम का मालिक था, वह चेकअप के लिए आने को कह रहा था। डॉक्टरों से मेरा तकरार अर्से तक चलता रहा। लुका-छिपी के इस खेल में मैंने महारत हासिल कर ली थी। डॉक्टर मित्र आते तो उन्हें अपनी मां के मुआयने में लगा देता। मां का रक्तचाप लिया जाता तो वह निहाल हो जाती कि बेटा उनका कितना ख्याल रख रहा है। मां की खैरियत जाने बगैर कोई डॉक्टर मित्र मेरे घर की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकता था।

मां दिन भर हिंदी में गीता और रामायण पढ़ती, मगर हिंदी बोल न पाती। वह टूटी-फूटी पंजाबी मिश्रित हिंदी में ही सबसे संवाद स्थापित कर लेती। उनमें कुछ वकील थे, कुछ जज। प्रशासनिक अधिकारी थे तो उद्यमी भी। प्रोफेसर थे तो छात्र भी। ये सब दिन ढले के बाद 45 के दोस्त थे। पीने-पिलाने वाले दोस्तों का अच्छा-खासा कुनबा बन गया था। शाम को किसी न किसी मित्र का ड्राइवर वाहन लेकर हाजिर हो जाता अथवा हमारे ही घर के बाहर वाहनों का तांता लग जाता।'

कोई आदमी किन कारणों से शराब पीता है, इसका अत्यंत रोचक वृत्तांत किताब में दर्ज है : 'यह जानना जरूरी है कि आदमी यथार्थ से कन्नी काटने के लिए पीता है या यथार्थ से मुठभेड़ के लिए। पलायन के लिए या आत्मविश्वास जगाने के लिए। वास्तव में अलग-अलग लोग अलग-अलग कारणों से पीते हैं, जबकि समान कारणों से मदिरा पान के गुलाम हो जाते हैं। कुछ लोग इसलिए पीते हैं कि उनके पास पीने के अलावा कोई दूसरा काम नहीं होता। कुछ लोग ऊब से मुक्ति पाने के लिए पीते हैं। बहुत से लोग सोहबत में पीने लगते हैं। कोई बंधन से मुक्त होने के लिए पीता है तो कोई बंधन के आकर्षण में। गरीबी भी मदिरा पान के लिए उकसाती है और संपन्नता भी। सुख प्रेरित करता है तो दुख भी। आदमी उल्लास में पीता है, विलास में पीता है, शोक में पीता है, संताप में पीता है, परिताप में पीता है। सच तो यह है कि पीने वाले को पीने का बहाना चाहिए और जिसे पीने का चस्का लग गया, उसे पीने का बहाना मिल ही जाता है।'

सन् 1975 के आसपास के हिंदी साहित्य की दुनिया का रेखांकन करते हुए रवींद्र कालिया दर्ज करते हैं : 'मुझे शराब ने ही नहीं, पत्रकारिता और साहित्य ने भी बहुत भ्रमण करवाया। अशोक वाजपेयी से आप सहमत हों या नहीं, मगर यह सच है कि उन्होंने बीच-बीच में जंगलों में भी साहित्य की धूनी रमाई। उन्होंने एक बार लेखकों की एक गोष्ठी सीधी के जंगलों में आयोजित की थी। वह उन दिनों सीधी के कलेक्टर थे। किसी अफसर को वनवास लेना हो तो इससे बढ़िया जगह नहीं हो सकती। मध्य प्रदेश के बहुत से इलाके आज भी रेलमार्ग से कटे हुए राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़े हैं। सीधी भी ऐसी ही जगह है। सीधी शहर रीवां से लगा हुआ है और रीवां इलाहाबाद का पड़ोसी, मगर मध्य प्रदेश का नगर है। अशोक वाजपेयी की जंगल से निकलने की इच्छा होती तो वह इलाहाबाद चले आते। मेरा अशोक से कौटुंबिक किस्म का रिश्ता नहीं रहा, लेकिन साहित्यिक संबंध शुरू से ही रहा।

हालांकि हम लोगों की दिशाएं अलग-अलग थीं। वह आलोचना और काव्य वृत्त से ताल्लुक रखते थे और मैं कहानी तक सीमित था। उन दिनों साहित्य में वैचारिक मतभेद जरूर थे, मगर अब जैसी खेमेबाजी न थी। दिल्ली में तमाम लेखक वैचारिक मतभेद के बावजूद आपस में मेलजोल रखते थे। अशोक वाजपेयी ज्यादातर श्रीकांत वर्मा, अशोक सेकसरिया, निर्मल वर्मा, महेंद्र भल्ला तथा प्रयाग शुक्ल के साथ नजर आते। ये पढ़ाकू किस्म के अंतर्मुखी लोग थे और मेरी आमदोरफ्त मोहन राकेश और कमलेश्वर के यहां ज्यादा थी।' लेखकों के बारे में बताते हुए कालिया जी यह भी कहते हैं कि उन दिनों निर्मल वर्मा, श्रीकांत, महेंद्र भल्ला तथा प्रयाग शुक्ल लेखकों से

अलग-थलग रहने की कोशिश करते। निर्मल वर्मा की दुनिया बहुत मायावी थी। वह मोहन राकेश और कमलेश्वर के गद्य से भिन्न एक जादुई संगीतमयी भाषा में हिंदी के लिए नितांत नया सिंटेक्स विकसित कर रहे थे। मोहन राकेश और कमलेश्वर को इन लेखकों की एकांतिक दुनिया से सख्त एतराज था। उनका मानना था कि वे लेखक वृहत्तर सामाजिक संदर्भों की अहवेलना कर जीवन से असम्पृक्त लेखन कर रहे हैं, जिनकी रचनाओं में सामाजिक सरोकार नहीं हैं।

जालंधर से शुरू हुआ रवींद्र कालिया का जीवंत जीवन सफर हिसार, दिल्ली और मुंबई से होता हुआ इलाहाबाद में थमता और वहीं पर शिखर को छूता है, जहां उन्होंने भरपूर लेखकीय जीवन जिया और उत्तर भारत के लेखकों से उनके रिश्ते बनते-बिगड़ते और बिखरते रहे। पढ़कर मानना पड़ता है कि रवींद्र कालिया की आत्मकथा 'गालिब छुटी शराब' अद्‌भुत है, अभूतपूर्व भी।

कितने शहरों में कितनी बार

कहानी की तरह संस्मरण विधा भी केंद्रस्थ होने की जद्दोजहद में है, लेकिन बहुत धीरे-धीरे। ममता कालिया की संस्मरण कृति 'कितने शहरों में कितनी बार' पढ़कर मन में उथल-पुथल मच गयी और अनेक सवाल सिर उठाने लगे। कविता न जाने कब से साहित्य के केंद्र में है, लेकिन इधर उसने अपनी केंद्रीयता खो दी है। बीच के समय में उपन्यास और कहानी ने खुद को केंद्र में स्थापित किया। शोर व्यंग्य और लघुकथा का भी कम नहीं मचा, लेकिन किसी लघुकथा संग्रह को साहित्य अकादेमी पुरस्कार आज तक नहीं मिला। व्यंग्य को सिर्फ एक बार तो कहानी को दो बार ताज पहनने का सौभाग्य हासिल हुआ। अब भी ज्यादातर कवि और उपन्यासकार ही साहित्य अकादेमी पुरस्कार हासिल करते हैं। अपने संस्मरणों में काशीनाथ सिंह श्रेष्ठ सर्जक रूप में उपस्थित होते हैं, इसके बावजूद उनका 'काशी का अस्सी' मोक्ष नहीं प्राप्त कर सका, लेकिन उनके ही 'रेहन पर रग्घू' को मोक्ष मिल गया, क्योंकि वह उपन्यास है, जबकि 'काशी का अस्सी' संस्मरण, जो 'आछे दिन पाछे गए' के बाद छपा।

'काशी का अस्सी' पुरस्कृत होता तो काशीनाथ सिंह की बांछें खिल जातीं, क्योंकि तब वे हरिशंकर परसाई के व्यंग्यकार के समक्ष संस्मरणकार के रूप में अपनी विधा के पहले सिंकदर होते, निर्मल वर्मा की तरह, जो हिंदी कहानी के पहले सिकंदर सिद्ध हुए। बहरहाल, काशी का उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' उन्हें पंक्तिपावन तो बना ही गया, जिसके लिए हल्की ही सही, उनके धवल चेहरे पर तिरछी मुस्कान तिर गयी, लेकिन ममता कालिया की संस्मरण कृति 'कितने शहरों में कितनी बार' को लाख टके का सीता पुरस्कार प्राप्त हुआ तो उनकी तो बांछें ही खिलीं, लेकिन रवींद्र कालिया के ठहाकों से घर की खिड़कियां-दरवाजे तक हिल गए।

आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूं' के लिए हरिवंश राय बच्चन और शरत की जीवनी 'आवारा मसीहा' के लिए विष्णु प्रभाकर को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिलता तो कुछ और बात होती। बच्चन के काव्य 'दो चट्टानें' और विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' को भले ही साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिले, लेकिन उस सम्मान के लिए उनकी डिजर्विंग कृतियां तो 'क्या भूलूं क्या याद करूं' और 'आवारा मसीहा' ही थीं, जिस पर विद्वानों से लेकर सुधी पाठक तक सब एकमत हैं, लेकिन दुनिया में बहुमत का सम्मान होता कहां है?

दलित और स्त्री रचनाकारों ने इधर आत्मकथा को लगभग केंद्रीय विधा की तरह अपना लिया है। मराठी में आत्मकथाओं की धूम है और जीवनियों की भी। आनंद यादव की आत्मकथा 'जूझ' को मराठी के खाते में साहित्य अकादेमी पुरस्कार तक मिला, लेकिन हिंदी में आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण के लिए दिल्ली अभी दूर लगती है, जबकि 'कितने शहरों में कितनी बार' की सर्जक ममता कालिया के लिए दिल्ली कभी भी दूर न थी, क्योंकि वह उनके लिए मायके सरीखी रही। दिल्ली से सटे गाजियाबाद में उनके माता-पिता देर तक रहते रहे और चाचा भारतभूषण अग्रवाल तो दिल्ली के ही बाशिंदे ठहर गए। बेशक ममता का जन्म वृंदावन में हुआ, लेकिन उनकी पढ़ाई-लिखाई नागपुर, मुंबई, पुणे, इंदौर और दिल्ली जैसे बड़े शहरों में हुई और पाकिस्तान का ऐबटाबाद उनका ननिहाल ठहर गया, जहां एक दिन ओसामा बिन लादेन मारा गया था ममता की ससुराल इलाहाबाद में कौन मारा गया?

जन्म और पढ़ाई-लिखाई के निर्णय मनुष्य के अपने वश में नहीं होते, लेकिन ममता इलाहाबाद, मुंबई, कोलकाता और दिल्ली में खूब घूमी-फिरीं, कुछ इस तरह कि भारत के इन प्रमुख शहरों के सांस्कृतिक स्थल ही नहीं, चाट-पकौड़े की दुकानों के साइन बोर्ड कब-कब बदले गए, यह तक ममता को याद रह गए, जिसे उन्होंने 'कितने शहरों में कितनी बार' में हूबहू दर्ज कर दिया, जिसे पढ़कर उनकी याद्दाश्त का लोहा मानना पड़ता है, वरना कहां किसी को बचपन और जवानी के दिनों का खाया-पिया कुछ याद रहता है और कहां याद रहते हैं वे लोग, जिन्होंने कभी मुग्ध नजरों से हमें निहारा होता है, कभी कुछ कहना चाहा होता है, लेकिन कहते-कहते होंठ सिल गए होते हैं, पर ममता कालिया ने उन सब मुग्ध नजरों को याद रखा और अपने संस्मरणों की किताब में बड़े कौशल से दर्ज कर दिया। और तो और, 'तेरी कुड़माई हो गयी' पूछने वाले तक की बात नहीं छिपायी और रवींद्र कालिया को बता दिया कि एक तुम्हीं सूरमा नहीं थे, थे कई जन और भी मेरे करीब, लेकिन तुम्हें ही मुकद्दर मान लिया हमने। ममता के संस्मरण पढ़कर लगता है कि कोई रचनाकार कभी संस्मरण लिखे तो ऐसे डूबकर, जैसे ममता ने लिखे हैं। ममता कालिया लिखती हैं तो स्त्रियों की ही व्यथा कथा नहीं लिखतीं, वे पुरुषों की तकलीफ को भी आत्मसात कर मेरी-तेरी-सबकी बात लिखती हैं। हर सच्चा लेखक यही करता है।

नहीं, 'कितने शहरों में कितनी बार' सिर्फ संस्मरण नहीं हैं, वे ममता के आत्मलेख जैसे हो गए हैं, जैसे राजेंद्र यादव के आत्मकथ्यांश 'मुड़-मुड़के देखता हूं'। इसमें अगर ममता का ऊबड़-खाबड़ जीवन पथ झांक रहा है तो 'मुड़-मुड़के देखता हूं' में राजेंद्र यादव का, पर इन दोनों ने ही अपनी इन कृतियों को आत्मकथा कहने से परहेज किया और मन्नू भंडारी ने भी, जिन्होंने राजेंद्र यादव के आत्मकथ्यांश की प्रतिक्रया में लिखी थी 'एक कहानी यह भी', जिसमें वे राजेंद्र से कहती हैं कि 'मुड़-मुड़के देखा था तो यह भी देखते'। राजेंद्र ने अपनी किताब में जो नहीं देखा, मन्नू भंडारी ने वह भी देखा, लेकिन सिर्फ वही नहीं, और भी बहुत कुछ देखा और पाठकों को भी दिखाया, किंतु मन्नू ने भी 'एक कहानी यह भी' को आत्मकथा मानने से इनकार कर दिया। इसकी वजह शायद यह है कि तीनों सर्जकों ने अपनी किताबों को मुकम्मल आत्मकथा की तरह लिखा ही नहीं।

ममता कालिया से 'तद्भव' संपादक अखिलेश ने अपने जिये-भोगे शहरों पर संस्मरण लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने लिखे भी संस्मरण ही, जबकि नामवर सिंह से अखिलेश ने अपने बारे में लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने बोलकर कुछेक अंश लिखवाए थे, जो अद्भुत हैं, लेकिन लगता नहीं कि नामवर की 'अद्भुत अपूर्व आत्मकथा' हम कभी पढ़ सकेंगे, क्योंकि उन्होंने जीवन भर औरों का लिखा ही देखा-पढ़ा और उसी के बारे में लिखते-कहते रहे और जब अपने बारे में कुछ कहने के क्षण आए तो अक्सर उनके होंठ सिल गए, लेकिन ममता ने कहीं भी अपने होंठ नहीं सिले, सिवा इसके कि राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी के साथ पहली बार घर आए रवींद्र कालिया को उन्होंने कनखियों से देखा तो जरूर था, लेकिन जब चंडीगढ़ से बस में साथ बैठकर दिल्ली लौट रहे रवींद्र कालिया ने पूछा कि उस दिन उन्होंने उन्हें कैसे देखा था तो उस 'देखा-देखी' को वे सिरे से नकार गयीं, जबकि सच यह था कि वे सफेद झूठ बोल रही थीं और रवींद्र द्वारा रंगे हाथ पकड़ ली गई थीं। उसके बाद उन्होंने रवींद्र से कभी झूठ नहीं बोला।

संगीन जुर्मों के गुनाहों का इकबाल

पंजाबी कथाकार अजीत कौर की आत्मकथा 'खानाबदोश' न तो उस तरह की आत्मरचना है, जिस तरह की अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', दलीप कौर टिवाणा की 'नंगे पैरों का सफर' या कमलादास की 'मेरी कहानी', न ही यह हरिवंशराय बच्चन की 'क्या भूलूं, क्या याद करूं' जैसी बांध लेनेवाली कृति है। उग्र की 'अपनी खबर' जैसी भी नहीं। 'खानाबदोश' उस तरह का आत्मकथात्मक उपन्यास भी नहीं है, जिस तरह का मराठी में दया पवार ने 'अछूत' और आनंद यादव ने 'जूझ' लिखा या रामनगरकर ने 'रामनगरी', बल्कि इसे तो राजेन्द्र यादव के आत्मकथ्यांश 'मुड़-

मुड़के देखता हूं' की तरह अव्यवस्थित तरीके से टुकड़ों-टुकड़ों में एक-दूसरे से असंबद्धप्राय आत्माभिव्यक्तियों का समुच्चय कहना ज्यादा सही होगा, क्योंकि आत्मकथा का न सिर्फ पारंपरिक ढांचा यहां गायब हैं, बल्कि इसमें वैसे अनुशासन का भी अभाव है, जैसा एक सुगठित आत्मकथा में होना चाहिए। यह एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है, जिसने खुद भारतीय स्त्री के बंधे-बंधाए पारंपरिक ढांचे को तोड़ने का जोखिम ही मोल नहीं लिया, जिंदगी में उसकी भरपूर कीमत भी चुकाई। अमृतलाल नागर की इसी तरह की आत्मकथा 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' से भी भिन्न है अजीत कौर की 'खानाबदोश'। शायद हर महत्वपूर्ण रचना अपनी प्रकृति में अपना सानी आप होती है। अजीत कौर की 'खानाबदोश' पंजाबी की ऐसी आत्मकथा है, जिसकी तुलना भारतीय भाषाओं की किसी भी आत्मकथा से नहीं की जा सकती, क्योंकि इसमें अजीत कौर ने खुद को कथा का केंद्र न मानकर अपने आसपास बहते जीवन के आवारा दरिया को उसकी समूची इयत्ता के साथ पकड़ने की कोशिश की है, जिसमें उनकी अपने स्त्री जीवन की कथा भी शामिल हो गयी है। अजीत कौर ने यहां जिंदगी को अपने तरीके से जिया और जाना है। कथा-आत्मकथा के रूप में उसे 'खानाबदोश' की शक्ल दी तो भी अपने ही तरीके से, क्योंकि उन्होंने अपनी जिंदगी न तो किसी दूसरे के तरीके से जी, न ही उसे किसी दूसरे के तरीके से लिखा, इसीलिए 'खानाबदोश' एक बीहड़ आत्मरचना है।

अजीत कौर ने लिखा है कि 'इतने बरस, जब भी जिंदगी की भयानक तकलीफ और संताप से वास्ता पड़ा, लाचारी और मजबूरी की जब भी शक्ल देखी, मौत की तरफ कदम-कदम जाते किसी के पांव देखे, कलेजा पिघल उठा है। शायद इसलिए कि बहुत पहले, जब मन बेहद कोमल होता था और चलती जिंदगी की धमक मन की नर्म मिट्टी में कुआं खोदती चलती थी तो मूआं की मौत ने मन को खारा समंदर बना दिया। लोगों के ओछे और कमीने हिसाब-किताब से नफरत होती है तो यह भी शायद इसलिए कि उस उम्र में, जब अभी मुश्किल से नौ-दस बरस की थी, मूआं की सगी मां और सगे बाप के हिसाब-किताब लगाकर किए मुआं के मौत के फैसले से खौफनाक नफरत पैदा हुई थी। उसके बाद हिसाब-किताब से जीना मेरे लिए गुनाहे-अव्वल हो गया।' और भारतीय समाज में बिना हिसाब-किताब के जीनेवालों का हश्र 'खानाबदोश' से कम तो क्या ही होता है। यहां अजीत कौर नाम की उस लड़की की दास्तान है, जो भारत-विभाजन के दर्दनाक हादसे से लेकर अंत तक भटकती ही रही, क्योंकि अजीत कौर को हमेशा लगता रहा कि 'राह भूलकर ऐसी सड़क पर आ गई हूं, जिसकी वीरानगी और आवारगी मेरे अंदर आहिस्ता-आहिस्ता टपक रही है। भीड़ से अलग एक सड़क। मुझे यह भी पता है कि यह

सड़क दरिया की तरफ जाती है, मस्त दरिया की तरफ, जिसमें कभी जलतरंग के मद्धम स्वर उठते और कभी नगाड़े बजते हैं, बहुत सारे। लगातार। यह सारी आवाजें हवा की लहरों के ऊपर तैरकर आती और मुझसे टकराती हैं। दरिया में रवानगी है, आवारगी है, जिप्सी दरिया, खानाबदोश, पर अभी मैं उस दरिया की तरफ चल रही हूं, चलती जा रही हूं। हवा की आवाजों से लगता है कि दरिया बहुत दूर नहीं है।'

इस तरह अजीत कौर उस खानाबदोश दरिया की तरह बहती रहीं, जिसे अगले पल आनेवाले मोड़ का, किनारे का, पाट का कुछ भी अता-पता नहीं रहा, क्योंकि वे हिसाब-किताब लगाकर कभी नहीं चलीं। उनकी नजर में वह गुनाहे-अव्वल जो ठहरा, लेकिन उस गुनाह का वह क्या करें, जो उनके औरत बनकर पैदा होने में निहित है। वे लिखती हैं-'गुनाहे अव्वल औरत होना। गुनाहे दोम-अकेली औरत। गुनाहे सौम-अकेली और अपनी रोटी खुद कमाती औरत। गुनाहे अजीम तरीन-अपनी रोटी खुद कमाती, जहीन, खुद्दार और अकेली औरत। सो दोस्तो, सबसे पहले अपने इन चारों संगीन जुर्मों के गुनाहों का इकबाल करती हूं।'

ऐसी औरत को लोग बर्दाश्त कर सकते हैं क्या? नहीं ही कर सके। कर सके होते तो अजीत न तो अजीत कौर होतीं, न ही इस्मत नाम की लड़की इस्मत चुगताई हो पाती। न ही अमृता प्रीतम की कलम इस कदर बुलंद होती कि यहां के लोग उसे बर्दाश्त ही न कर पाते, लेकिन उन्हें बर्दाश्त तो इस मुल्क ने किया ही और फिर आदर के साथ स्वीकार भी कर लिया। शायद हर मुल्क के लोग अलग तरह की प्रतिभाओं के साथ कुछ ऐसा ही सुलूक करते हैं।

वह चाहे बचपन में मूआं की मौत हो, बलदेव से बिछड़ना, असफल विवाह, बेटी कैंडी का फ्रांस में जलकर मरना, बाद में ओमा के साथ चला लंबा प्रेम प्रसंग, हर कहीं अजीत ने अपनी जिजीविषा का परिचय देते हुए अपने अकेलेपन से उबरने की कोशिश की और किया हर कहीं खुद्दार बने रहने का साहस, जो उनके लिए स्त्री से ऊपर उठकर व्यक्ति बनने की प्रक्रिया का एक हिस्सा रहा। वे स्त्रियां, जो देवताओं के इस मुल्क में देवी बनकर नहीं, मनुष्य बनकर जीना चाहती हैं, उन्हें 'खानाबदोश' जरूर पढ़नी चाहिए, जिसके गगन गिल कृत अनुवाद की भाषा में गजब का प्रवाह है और शैली में गजब की पकड़ भी। लगता ही नहीं कि हम हिंदी की मूल रचना नहीं पढ़ रहे।

चिन्तन-स जन का स्वामित्व सम्बन्धी विवरण

फार्म 4

नियम 8

1.	प्रकाशन स्थान	:	दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
3.	स्वामी		आस्था भारती, नई दिल्ली
4.	मुद्रक	:	डॉ. लता सिंह सचिव, आस्था भारती
	(क्या भारत के निवासी हैं?)		हाँ, भारतीय
	पता		27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट मयूर विहार फेस-1 विस्तार दिल्ली-110096
5.	प्रकाशक	:	डॉ. लता सिंह सचिव, आस्था भारती
	(क्या भारत के निवासी हैं?)		हाँ, भारतीय
	पता		27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट मयूर विहार फेस-1 विस्तार दिल्ली-110096
6.	सम्पादक	:	डॉ. बी. बी. कुमार सम्पादक, आस्था भारती
	(क्या भारत के निवासी हैं?)		हाँ, भारतीय
	पता		27/201, ईस्ट एण्ड अपार्टमेण्ट मयूर विहार फेस-1 विस्तार दिल्ली-110096

मैं डॉ. लता सिंह घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

(ह.) डॉ. लता सिंह

जून 19, 2019 प्रकाशक